मुद्राराक्षस की कहानियों में सांप्रदायिकता की समस्या

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ की एम.फिल. (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक :
डॉ. अमित कुमार

शोधार्थी :
लीशा यादव
अनुक्रमांक:10200

हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग
भाषा, भाषाविज्ञान, संस्कृति एवं विरासत पीठ
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़-123031

(2017-18)

घोषणा-पत्र

मैं, लीशा यादव यह घोषणा करती हूँ कि **डॉ. अमित कुमार** के शोध निर्देशन में '**मुद्राराक्षस की कहानियों में सांप्रदायिकता की समस्या**' विषय पर एम.फिल.(हिंदी) की उपाधि प्राप्ति के लिए लघु शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर रही हूँ। मेरा यह प्रबंध पूर्णत: मौलिक एवं शोधपरक है। मेरी जानकारी में इससे पूर्व हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय तथा अन्य किसी भी संस्था अथवा विश्वविद्यालय में इस विषय पर कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। इस लघु शोध-प्रबंध के लेखन में समस्त संदर्भों का यथास्थान उल्लेख किया गया है।

(लीशा यादव)

शोधार्थी

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **सुश्री लीशा यादव** ने मेरे निर्देशन में एम. फिल. (हिंदी) की उपाधि हेतु '**मुद्राराक्षस की कहानियों में सांप्रदायिकता की समस्या**' विषय पर शोध कार्य किया है। यह शोध कार्य इनके मौलिक प्रयास का प्रतिफलन है। मैं इस लघु शोध-प्रबंध की मौलिकता और प्रतिपादित तथ्यों की उपयोगिता को दृष्टिगत कर इसे मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

शोध-निर्देशक

(डॉ. अमित कुमार)

सहायक प्रोफ़ेसर

हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़।

भूमिका

साहित्य समाज की लगभग प्रत्येक घटना का साक्षी होता है और इसी साक्ष्य के आधार पर तत्काल तथा समकालीन संदर्भों में इतिहास की घटनाओं का विवेचन-विश्लेषण होता है। साहित्य संवेदनाओं का रूपांतरण है और सांप्रदायिकता का प्रत्यक्ष परिणाम विभाजन से संबंधित साहित्य में दिखाई पड़ता है। यूं तो सांप्रदायिकता भारत के लिए हमेशा से एक ज्वलंत मुद्दा रही है, लेकिन 1991-1992 में रामजन्म भूमि विवाद के दंगों के बाद एक बार फिर लोकतंत्र को झटका लगा और दंगों के कारण नफ़रत की चिंगारी को हवा मिली जो आज तक किसी न किसी बहाने से बरकरार है। ऊपर से यह समस्या सुलझी हुई लगती है लेकिन बारीकी से देखा जाये तो इसकी जड़े बहुत गहरी हैं। समस्या कहीं और नहीं हमारी संवेदनाओं की गहराइयों में बैठी हुई है और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्थितियों का आधार पाकर भड़क उठती है। सांप्रदायिकता की भावना हमारी साँझी संस्कृति को नुकसान पहुंचाती है, लेखक ने इसे तथ्य के साथ प्रमाणित करने का प्रयास किया है। एक धर्म दूसरे धर्मों की तुलना में अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने हेतु छल-छद्म, शास्त्र, धर्म व राजनीति का घिनौना प्रयोग करने से नहीं हिचकते हैं। स्वार्थी नेतागण इस समस्या का जड़ से नाश करने के लिए तत्पर नहीं हैं अन्यथा यह समस्या जल्द ही समाप्त हो जाती या हो जाये। ये अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु दंगों की आग को हमेशा जलाए रखना चाहते हैं।

मुद्राराक्षस ने अपनी कहानियों के माध्यम से सांप्रदायिकता की समस्या के पीछे मौजूद ताकतों एवं महीन तंतुओं को जानने एवं समझने की दृष्टि दी है। मुद्राराक्षस साठोत्तरी कहानीकारों में आते हैं। उन्होनें अपने चारों तरफ फैले व्यापक सामाजिक परिवेश से जुड़कर अपनी सार्थकता प्रमाणित की है। मुद्राराक्षस नाम सुनते ही ज़ेहन में अति प्रसिद्ध नाटककार विशाखदत्त के नाटक 'मुद्राराक्षस' की याद आती है या फिर इसी नाटक का अनुवाद जिसे सन् 1878 में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया था उसका नाम भी मुद्राराक्षस है। इन दोनों नामों का कोई संबंध नहीं है फिर भी उस नाटक

में आनेवाला पात्र मुद्राराक्षस है जो अपने राजा से कहता है- "अपनों देश धरम कुल समुझहु ! वृत्ति निज दासी।" मतलब राजा साहब केवल स्वयं उच्च पद पाने के प्रलोभन में फंसकर देशहित और प्रजाहित को भूल जाते हो। जिसने तुझे गद्दी दी है उसी को भूल जाना ठीक नहीं है। इसी तरह आज देश पर शासन करने वाले सत्ताधारियों को भी अपनी कृतियों के माध्यम से सुभाषचंद्र आर्य (मुद्राराक्षस) यही सन्देश देते नज़र आते हैं। राजनीति का अर्थ क्या हमेशा से अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को लूटना रहा है? ऐसा नहीं है क्योंकि जब यह शब्द चलन में आया होगा तब निश्चित ही इसका अर्थ ऊँचा रहा होगा। तभी तो श्री राम से राज्य मिल जाने के बाद भी भरत उसे स्वीकार नहीं करते। अगर भरत के हृदय में नाम मात्र भी राजनीति आयी होती तो श्री राम के वनगमन पर खुशियाँ मनाते, माताओं और भाइयों की पत्नियों को देश निकाला या कारावास दे देते, छोटे भाई शत्रुघ्न को किसी न किसी तरह अपने साथ कर लेते, राम के चौदह वर्ष के वनवास को अट्ठाइस वर्षों में बदल देते आदि। लेकिन ऐसा नहीं हुआ ये सब आज के 'राजनीति' शब्द के लक्षण हैं जो अपने स्तर से नीचे गिर गया है और अपना अर्थ खो दिया। आज के समय में आपस में विग्रह, विद्वेष, हिंसा, भेदभाव बढ़ाने का ही दूसरा नाम राजनीति है जिसके कारण सांप्रदायिक जैसी समस्या उपजती है।

अध्ययन की सुविधा के लिए मैनें अपने लघु शोध प्रबंध को तीन अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय 'मुद्राराक्षस और उनकी रचनाएँ' में लेखक का सामान्य परिचय देते हुए लेखक के महत्व को रेखांकित किया गया है। द्वितीय अध्याय 'सांप्रदायिकता: अवधारणा एवं स्वरूप' में सांप्रदायिकता के अर्थ एवं स्वरूप को समझाते हुए हिन्दी कहानियों में सांप्रदायिकता की क्या स्थिति है उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है। तृतीय अध्याय में 'मुद्राराक्षस की कहानियों में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता की समस्या' में रचनाकार की कहानियों का अध्ययन करते हुए सांप्रदायिकता की समस्या के स्वरूप को विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

अपने शोध-निर्देशक डॉ अमित कुमार सर को मैं सहृदय धन्यवाद देना चाहती हूँ जिन्होंने गद्य में मेरी रूचि देखते हुए बहुत विचार विमर्श करने के पश्चात यह विषय (मुद्राराक्षस की कहानियों में सांप्रदायिकता की समस्या) मुझे सुझाया और जिनके स्नेहिल सहयोग और मार्गदर्शन के बिना यह शोध कार्य पूर्ण होना असम्भव था। इसी के साथ डॉ सिद्धार्थ शंकर राय सर से समय-समय पर शोध से संबंधित पूर्ण सहयोग एवं जानकारी प्राप्त होती रही। इनके अतिरिक्त डॉ अरविन्द सिंह तेजावत सर का आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही श्री रोमेल मुद्राराक्षस जी (मुद्राराक्षस के पुत्र) की आभारी हूँ जिन्होंने मुद्राराक्षस के बारे में भरपूर जानकारी दी जिससे शोध-कार्य को नई दिशा मिली।

माँ-पापा का प्यार कदम-कदम पर मिलता रहा। उनके प्रति शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापित नहीं की जा सकती। दोनों दीदी-जीजाजी एवं दोस्त वैभव की आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर मेरा हौसला बढ़ाया। साथ ही सभी वरिष्ठ शोधार्थी एवं मित्रों का धन्यवाद व्यक्त करती हूँ। शोध के दौरान विभिन्न पुस्तकालयों की पुस्तकों का उपयोग मैंने अध्ययन के लिए किया, विशेष रूप से दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के कर्मचारियों का सहृदय धन्यवाद जिन्होंने भरपूर सहयोग दिया।

13 जुलाई 2018 (लीशा यादव)

अनुक्रमणिका

भूमिका	i-iii
अध्याय	पृष्ठ सं.
प्रथम अध्याय : मुद्राराक्षस और उनकी रचनाएँ	1-21
द्वितीय अध्याय : सांप्रदायिकता : अवधारणा एवं स्वरूप	22-78
तृतीय अध्याय : मुद्राराक्षस की कहानियों में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता की समस्या	79-101
उपसंहार	102-104
संदर्भ ग्रंथ सूची	105-107

प्रथम अध्याय

मुद्राराक्षस और उनकी रचनाएँ

प्रथम अध्याय

मुद्राराक्षस और उनकी रचनाएँ

1.1 मुद्राराक्षस का जीवन :

मनुष्य के जीवन में घटने वाली घटनाएँ उस पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं एवं उसके व्यक्तित्व को बनाने एवं बिगाड़ने में जीवन में घटने वाली इन घटनाओं की महत्ती भूमिका होती है।'सुभाषचंद्र आर्य' को 'मुद्राराक्षस' बनाने वाली घटनाओं ने मुद्राराक्षस के विशिष्ट व्यक्तित्व को संवारने में विशेष भूमिका निभाई है। मुद्राराक्षस के व्यक्तित्व को निर्मित करने वाली घटनाओं पर विस्तार से चर्चा करने से पूर्व उनके व्यक्तित्व का एक अंश उनके नाटक 'आला अफसर' के संवाद के माध्यम से व्यक्त करना प्रासंगिक होगा

"सभी : गाइए गणपति जय वंदन

जिनके कान न सुनते क्रंदन

गाइए गणपति जय वंदन।

हर सवाल का सदा एक हल

नारे घिसो लगाओ चन्दन

गाइए गणपति जय वंदन।

घुटता देश गंधाता शासन

बहुत हुआ अब जागो जन मन

गाइए गणपति जय वंदन।

रंगा : (सामने आकर) हाँ तो अपने मेहरबान कद्रदान लोगों के सामने आज हम एक ऐसा खेल दिखाने जा रहे हैं जो खेल कम है ,सच्चाई ज्यादा है। क्या है ?

कोरस : सच्चाई ! "[1]

ये संवाद मुद्राराक्षस के सम्पूर्ण व्यक्तित्व (सांसारिक एवं साहित्यिक) को झलकाते हैं कि उन्होंने अपने साहित्य में कल्पना से अधिक युगीन परिस्थितियों एवं जीवनानुभवों को एक धागे में पिरोकर साहित्यिक विधाओं एवं स्वयं के व्यक्तित्व का सृजन किया है।

मुद्राराक्षस का जन्म 21 जून, 1933 में लखनऊ के पास बेहटा गाँव में हुआ। उनका वास्तविक नाम 'सुभाषचंद्र आर्य/ सुभाषचंद्र गुप्ता' था। उनके पिता का नाम शिवचरण लाल था जो राजनीतिक संदर्भ में काफी कट्टरपंथी थे और सुभाषचंद्र नाम 'सुभाषचंद्र बोस' के आदर स्वरूप दिया था। अब प्रश्न उठता है कि फिर सुभाषचंद्र गुप्ता नाम कैसे छद्म हो गया और मुद्राराक्षस कैसे इनका वास्तविक नाम बन गया? सुभाषचंद्र आर्य ने जिस समय हिंदी जगत में अपना पैर जमाया वह दौर सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का था, जो 'तार सप्तक' के संपादक के रूप में जाने जाते थे।

'अज्ञेय' के 'तार सप्तक' को पढ़कर सुभाषचंद्र ने एक आलोचनात्मक लेख लिखा जिसमें यह साबित किया गया कि अज्ञेय पर विदेशी लेखकों की गहरी छाप है। प्रयोगवाद पर लिखे गए इस लेख में उन्होंने यह साबित करने का प्रयास किया कि इसमें अमेरिका के अंग्रेजी कवि टी.एस.इलियट और लारेंस का प्रभाव है। गोकि सुभाषचंद्र अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे तो उन्होंने अपने सभी तथ्यों की पुष्टि उदाहरण सहित प्रस्तुत की जिसे 'युगचेतना' के संपादक डॉ. देवराज भी झुठला नहीं सके। यह लेख उन्होंने छापने के लिए डॉ. देवराज को दे दिया। पता नहीं डॉ. साहब की सुभाषचन्द्र नाम के अतिरिक्त किसी अन्य नाम से इस लेख को छापने में क्या मज़बूरी रही होगी और सुभाषचंद्र की सहमति से यह लेख मुद्राराक्षस के नाम से छापा गया एवं इस लेख ने सुभाषचन्द्र को मुद्राराक्षस नाम देने के साथ-साथ काफी ख्याति भी दी। मुद्राराक्षस नाम देखकर सबको लगा कि यह लेख किसी प्रौढ़ लेखक के द्वारा लिखा गया है। उस समय किसी को संज्ञान

भी न था कि इस लेख को लिखने वाला लेखक मात्र 19 साल का युवा लेखक है। "मेरा नाम जिस तरह का था, उसके कारण एक भ्रम भी बड़े पैमाने पर फैल रहा था। जिन्होंने मुझे देखा नहीं था वे मुझे एक खासा बुजुर्ग आदमी समझते थे। बल्कि इलाचंद्र जोशी इस बात पर खासे नाराज़ भी हुए थे। वे अपने पत्रों में मुझे 'आदरणीय' सम्बोधित करते रहे थे। कुछ अर्से बाद जब मेरा उनसे साक्षात हुआ तो वे बहुत नाराज़ हुए बोले, मैं तुम्हें आदरणीय लिखता रहा और तुमने उत्तर में यह नहीं बताया कि तुम्हारी उम्र इतनी कम है।"[2] इस लेख में उन्होनें काफी नई बातों का उल्लेख किया जिसे पढ़कर साहित्यकारों के बीच हलचल मच गई। सुभाषचंद्र गुप्ता से मुद्राराक्षस बनने के इस सफ़र से यह अंदाज तो अवश्य लगाया जा सकता है कि 19 साल का यह युवा सहित्य को अपने विवेक एवं ज्ञान से एक नई दिशा देने वाला था।

मुद्राराक्षस को मुद्राराक्षस बनाने में एक सहयोग उनकी पत्नी 'इंदिरा' जी का भी है। उन्हें प्रत्येक काम में अपनी पत्नी का साथ एवं प्रोत्साहन मिला चाहे वह किसी नाटक में अभिनय करना हो (संतोला नामक नाटक में मुख्य भूमिका निभाई) या मुद्रा जी द्वारा किए गए आंदोलनों में भाग लेना हो। इंदिरा जी ने मुद्राराक्षस के अनेक नाटकों में अभिनय किया है। मुद्राराक्षस की तीन संतानें हैं। एक बेटी एवं दो बेटे। बेटी शीराजी को बचपन में ही कुछ महीने बाद डायरिया होने के कारण उसे बचा नहीं पाये। इस बात का मुद्राजी को दुःख से ज्यादा आजीवन भर आक्रोश रहा। आक्रोश का कारण शायद यह रहा होगा कि वह अपनी पहली संतान को बचा नहीं पाये। लेकिन जल्द ही उन्हें दो पुत्र हुए-रोमी और रोमेल। रोमी अख़बारों में लेख लिखते हैं और 'प्रतिवाद' नामक पत्रिका का संपादन करते हैं। छोटे बेटे रोमेल दिल्ली में राष्ट्रीय स्तर की विज्ञापन एजेंसी में निदेशक एवं नेशनल क्रिएटिव डायरेक्टर हैं। मुद्राराक्षस को हर जगह (चाहे वह साहित्यिक दुनिया हो या व्यवसायिक क्षेत्र) अपने परिवार का सम्पूर्ण सहयोग मिला।

अपने समय का प्रत्येक लेखक अपनी समकालीन परिस्तिथियों को अपने साहित्य में उतारता है। फिर क्या कारण है कि प्रत्येक लेखक दूसरे से भिन्न हो जाता है एवं अपने साहित्य से

समाज को एक नई दृष्टि देता है। वह है उसका दृष्टिकोण परिस्तिथियों को समझने का विवेक। लेकिन एक दृष्टिकोण या नज़रिया तय करते वक़्त किसी भी साहित्यकार को सच्चाई से मुँह नहीं फेरना चाहिए और मुद्राराक्षस ऐसे ही साहित्यकार थे जो ना तो अपने विचारों को किसी पर थोपते थे ना ही सच्चाई से आँख मूँद लेते थे। उनका तर्क, विवेक, चिंतन व विज्ञानबोध ही उन्हें अन्य लेखकों से भिन्न करता है। उन्ही के शब्दों में, "मैं क्या करता? दलित रचनाकार प्रेमचंद और निराला को लेकर अपनी आपत्तियां पहले भी दर्ज कराते रहे हैं और सवर्ण लेखकों द्वारा इसके लिए उनकी निंदाएं भी की जाती रहीं है। प्रेमचंद ने दलितों पर कितनी 'अनुकम्पा' की है, जरूरत से कुछ ज्यादा तो नहीं कर दी है, यह एक अलग विषय है लेकिन सवर्ण लेखकों द्वारा उनके 'निंदक' दलितों की निंदा की ध्वनि कुछ ऐसी थी जैसे दलित लेखक प्रेमचंद को खारिज करके कोई बहुत बड़ा देश व समाजविरोधी अपराध कर रहे हो। सवर्ण लेखक विचारों के बजाय अनुदार टिप्पणियों में ज्यादा मुखर थे और प्रेमचंद को तर्क से परे आस्था का विषय बना रहे थे, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता था। क्योंकि वहां जो मानसिकता काम कर रही थी, वह यह थी सवर्ण करें तो करें, दलितों की क्या मजाल कि वे प्रेमचंद की आलोचना करें। मैं कहता हूँ कि यह हिंदी-हिन्दू असभ्यता की जड़ों में समायी हुई असहिष्णुता है, जो किसी भी विरोधी स्वर को स्वीकार नहीं करती। भले ही वह प्रतीकात्मक विरोध ही क्यों न हो। यह असभ्यता हिंदी भाषा को सरस्वती पूजा से जोड़कर उसे उत्तर भारत के हिन्दू धर्मावलंबियों की भाषा बना देने का सपना देखती है। उसके अनेक 'बुद्धिजीवी' अपने को ही समूचे देश का मालिक समझते हैं और मानकर चलते हैं कि उनके साम्राज्य के सामने सबको झुककर रहना या चलना चाहिए।"[3] इससे स्पष्ट है कि वह न तो बनाई गई एक परिपाटी पर चलने वाले साहित्यकार थे एवं ना ही समाज और साहित्य के ठेकेदारों के पिछलग्गू बनने वाले थे। उन्हें जहाँ गलत लगा उस बात को सच्चाई एवं निर्भीकता से कहा। यह अलग बात है कि इस कारण उन्हें काफी आलोचनाओं का सामना करना

पड़ा। लेकिन एक साहित्यकार की सफलता की पहचान उसकी आलोचनाओं से ही सिद्ध होती है।

मुद्राराक्षस जितना संस्कृत के विद्वान थे उतने ही अंग्रेजी के ज्ञाता। वे प्रकंड विद्वान थे इसमें कोई दो राय नहीं। संस्कृत की तालीम उन्होंने अपने नाना आचार्य चतुरसेन शास्त्री (हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार) एवं बाद में डी.ए.वी कॉलेज के प्रिंसिपल महेन्द्र प्रताप से ली थी। लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य (स्नातकोत्तर) में अध्ययन करने के कारण इन पर पाश्चात्य साहित्यकारों एवं साहित्य का प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन करने के दौरान उन पर मार्क्सवाद और यथार्थवाद का प्रभाव होने लगा एवं उन्हें ये एहसास होने लगा संस्कृत साहित्य यथार्थ से काफ़ी दूर है जिससे उन्हें अपने नाना के विचारों में खोखलापन महसूस होने लगा एवं ये अपने नाना के विचारों के विरोधी बन गए। मुद्राराक्षस को बचपन से ही एक साहित्यिक माहौल मिला जहाँ नाना आचार्य चतुरसेन शास्त्री की वजह से इनका आकर्षण साहित्य की ओर हुआ। वहीं पिता से रंगमंच की प्रेरणा मिली। उनके पिता "उत्तरप्रदेश की लुप्तप्राय प्राचीन लोक-नाट्य परम्परा 'स्वांग संपेडा' या 'नागरसभा' के एक मात्र जीवित उस्ताद थे।"[4] "उनके पिता शिवचरण लाल उर्दू-फारसी के जानकार ही नहीं थे बल्कि एक बेहतरीन कलाकार और शायर थे। लोक गायन और लोक नाट्य कला में उन्हें उत्तरप्रदेश संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार के अलावा उस ज़माने में काफी महत्वपूर्ण उपाधियों से नवाज़ा गया था। यही वजह थी कि मुद्राजी को लोककलाओं और संगीत का अद्भुत और गहरा ज्ञान था।"[5] एक सफल साहित्यकार होने के साथ-साथ मुद्राराक्षस एक बेहतरीन चित्रकार एवं मूर्तिकार भी थे। "पुराने टूटे फर्नीचर की लकड़ियों को निकाल कर उन्हें खूबसूरत मूर्तियों के रूप में ढाल देना उनकी खासयित थी। सिर्फ मूर्तियां ही नहीं, ज्यादातर ड्राइंग रूम में रखे बुक शेल्फ उन्होनें खुद ही तैयार किये थे।"[6]

जिस प्रकार यह माना जाता है कि असली गुरु या शिक्षक अच्छी किताबें होती हैं, उसी प्रकार देश भ्रमण करके भी मनुष्य अच्छे ज्ञान को प्राप्त करता है। मुद्राराक्षस पर यह दोनों बातें

सटीक बैठती हैं जहाँ उन्हें बचपन से ही साहित्यिक माहौल मिलने के कारण उन्होनें भारतीय साहित्य (वेदों से लेकर ब्रह्मसूत्र तक, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता जैसे अनेक पौराणिक, धार्मिक ग्रंथों के साथ कालिदास, बाण जैसे कवियों को पढ़ा) से लेकर पाश्चात्य साहित्य (मार्क्स, इलियट, काफ्का, विलियम कालसि विलियम्स, अस्तित्ववाद, यथार्थवाद आदि) का अध्ययन किया। पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्य पर सूक्ष्म एवं गहन पकड़ होने के साथ उन्होंने अपने ज्ञान में भारत भ्रमण करके उसमें बढ़ोत्तरी की। बचपन से ही घुमक्कड़ प्रवृति का होने के कारण उनके अध्ययनशील स्वभाव को बल मिला। बचपन में जंगलों में घूमने से लेकर नौकरी के दौरान पूरे उत्तर भारत में घूमने तक (चाहे वह स्थानांतरण के कारण रहा हो या आंदोलनों के कारण) इनके व्यक्तित्व एवं ज्ञान को निखारा। जंगलों में घूमने के कारण पेड़-पौधों, जानवरों में इनकी दिलचस्पी दिनों ब दिन बढती गई। जानवरों, पेड़-पौधों के प्रति इनका प्रेम अनोखा था। "एक एक पौधे पर इतनी बारीकी से निगाह रखते कि अगर हमसे कभी छत पर खेलते खेलते एक दो पत्तियां भी टूट जाती तो अगले दिन हमसे पूछा जाता कि पौधे से पत्तियां कैसे गायब हैं?"[7] दिल्ली में मुद्राजी ने अपने घर की छत पर हर किस्म के पौधे लगाए हुए थे जिनमें फ्लोक्स, डॉग फ्लावर, नाइन ओ क्लॉक से लेकर हर तरह के गुलाब, कैक्टस और फल लगे हुए थे। आलम यह था कि नौकरी के दौरान एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण करते समय उनके ट्रक में सामान से ज्यादा पौधे होते थे। वह एक भी पौधा छोड़ कर नहीं जाते थे। पेड़-पौधों के साथ-साथ मुद्राराक्षस को जानवरों से भी गहरा लगाव था। मुद्राजी को केवल बिल्ली और कुत्ते ही नहीं बल्कि किसी भी जीव से बेहद लगाव था। उनका मानना था, "आदमी ज्यादा पाशविक होता है और पशु ज्यादा मानवीय।" भारतीय संस्कृति में उल्लू जैसे जानवर को घर में पालना अच्छा नहीं समझा जाता। लेकिन मुद्राराक्षस ने उल्लू के बच्चे से लेकर गिलहरी के बच्चे तक को अपने घर एवं हृदय में स्थान दिया। "मुद्राजी की वजह से हमारे घर में जानवरों को इतना लाड़ प्यार था कि कभी-कभी हम माँ से कहते-हमसे ज्यादा तो इस घर में जानवरों को प्यार दिया जाता है।"[8] पेड़-पौधों एवं जानवरों के

साथ-साथ वह अपनी गाड़ी (लाल मोटर) के प्रति भी इतने भावुक थे कि बाद में उन्होनें बड़े भारी मन से उसे बेचा। मुद्राजी की एक खास बात यह थी कि उन्होनें कभी किसी भी लग्ज़री का इस्तेमाल नहीं किया। लग्ज़री के नाम पर बस उन्हें अपनी मोटर से प्रेम था जिसे वह अपनी दूसरी बीवी मानते थे। मोटर से तो प्रेम इस कदर था कि जब वे दिल्ली में आकाशवाणी से इस्तीफा देकर लखनऊ आये तो उनके परिवार ने उन्हें घर में जगह की कमी होने के कारण एवं मोटर पर व्यंग्य होने के कारण (दरअसल मुद्राजी लम्बाई में थोड़े छोटे थे एवं गाड़ी के दरवाजे बड़े और सीट नीची होने के कारण वह कार बिना ड्राइवर के लगती थी) बेचने को कहा तो उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया। लेकिन करीब तीस साल बाद उन्होंने उसे बेच दिया। कद छोटा होने के बावजूद भी उनके व्यक्तित्व में अलग किस्म का आकर्षण था जो उनके व्यक्तित्व को रौबदार बनाता था।

यूँ तो मुद्राजी छोटी सी उम्र मात्र 17-18 साल से ही लिखने लगे थे। लेकिन उन्हें ख्याति 1952 में प्रयोगवाद पर लिखे गये आलोचनात्मक लेख से मिली। ख्याति के साथ-साथ इन्हें इस लेख से मुद्राराक्षस नाम भी मिला। 1952 से पहले भी मुद्राजी कविताएँ एवं आलोचनात्मक लेख लिखते रहते थे बस फर्क इतना था कि वे इन लेख एवं कविताओं को कहीं छपवाते नहीं थे। वैसे तो बचपन से ही साहित्यिक माहौल मिलने के कारण उन्हें साहित्य में रुचि थी। बचपन में मुद्राराक्षस निराला एवं महादेवी से इतने प्रभावित थे कि इन्होंने महादेवी वर्मा की साहित्य संसद की तर्ज पर बाल साहित्यकार संसद बनाई, "वह 11वीं में रहे होंगे जब एक बार उन्होनें अपने कुछ स्कूली मित्रों के साथ मिल कर महादेवी वर्मा की साहित्य संसद की तर्ज़ पर बाल साहित्यकार संसद बनाई। इस संसद की ओर से हाथ से लिखा करीब चार सौ पृष्ठ का एक महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार किया। मुद्राजी इस ग्रन्थ को लेकर अपने एक मित्र के साथ महादेवी वर्मा के घर इलाहाबाद पहुँच गए। इस ग्रन्थ को देख कर महादेवी वर्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ।"[9] चार सौ पृष्ठ का ग्रन्थ लिख कर स्वंय तैयार करना दर्शाता है कि मुद्राराक्षस बचपन से ही साहित्य प्रेमी होने के साथ-साथ मेहनती भी थे। निचले स्तर के गरीब परिवार में जन्म लेने के कारण वह यह तो समझ

चुके थे कि ऊँचे मुकाम तक पहुँचने में परिस्थितियाँ आसान नहीं होने वाली है, लेकिन गरीबी को उन्होनें कभी कमजोरी नहीं बनाया बल्कि ढाल बना कर अपना मुकाम हासिल किया। लेखन कार्य के माध्यम से अपने जीवन स्तर को उठाया। गरीब होने के कारण वह चाहे खुद बचपन में कटु अनुभवों से परिचित हुए हो लेकिन उन्होंने अपने बच्चों एवं पत्नी को इन कटु अनुभवों का एहसास नहीं होने दिया। वह स्वयं चाहे लखनऊ के छोटे से सोहन लाल मुरारी पाठशाला में पढ़े हो लेकिन अपने बच्चों की शिक्षा उन्होनें कॉन्वेंट स्कूल (जे डी टाइटलर स्कूल करोल बाग) से कारवाई। यहाँ यह स्पष्ट करना भी जरुरी है कि इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे कॉन्वेंट के पक्षधर थे। "माँ इंदिरा जी का शौक था हमें कॉन्वेंट में ही पढ़ाया जाये, जबकि मुद्राजी ये कहने में बिल्कुल गुरेज नहीं करते थे कि मैं तो मुरारी पाठशाला में पढ़ा हूँ, कॉन्वेंट में पढ़ना जरुरी नहीं होता।"[10] सही मायने में लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए करने के पश्चात मुद्राराक्षस ने साहित्यिक जीवन का आरम्भ किया। सन् 1953 में कलकत्ता की 'ज्ञानोदय' पत्रिका में लेख लिखकर पत्रकारिता के माध्यम से साहित्यिक जीवन की शुरुआत की। बाद में संपादन कार्य भी करने लगे। सन् 1966 में अपना पहला नाटक 'मरजीवा' लिखा। फिर तो यह सिलसिला नाटक से लेकर कहानियों तक चलता रहा। उपन्यास, व्यंग्य, नाटक, निबंध, कहानियों तक यह सिलसिला चलता रहा। मुद्राराक्षस मूल रूप से नाटककार, व्यंग्यकार एवं कवि थे। नाटक एवं व्यंग्य के क्षेत्र में इन्हें ख्याति प्राप्त हुई। कहानी लेखन के गुर तो इन्होनें अमृतलाल नागर से सीखे थे। "इन्होनें नागर जी से कहा-मुझे कहानी लिखना नहीं आता। इस पर नागर जी ने समझाया सीख जाओगे। आज तुम कुछ घंटे अमीनाबाद के बजार में घूमों और लोगों की आँखें देखो। जितनी तरह की आँखें देखो उनका एक दो तीन चार पंक्तियों में विवरण लिख कर दिखाओ। मुद्राजी बताते थे की कथा लेखन का इतना कारगर और प्रभावशाली शिक्षण मैं नहीं जानता कोई दूसरा कथाकार दे सकता है।"[11] इस प्रकार अच्छे कवि, व्यंग्यकार एवं नाटककार के साथ-साथ उन्होनें सफल कहानीकारों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। व्यंग्यकार के रूप में तो मुद्राराक्षस की ऐसी पहचान थी कि इनके

व्यंग्य रचनाओं से राजनैतिक एवं आलोचना जगत में हलचल मच जाती थी। इनका 'मथुरादास की डायरी' व्यंग्य रचना तो इतनी विस्फोटक रही कि विरोधी लोगों ने इसकी श्रृंखला ही बंद करवा दी। राक्षस उवाच, धर्मग्रंथों का पुनर्पाठ नामक रचनाओं से तो उनका इतना विरोध हुआ की विरोधियों ने इनके घर पर पथराव तक किये एवं धर्मांधियों से तो उन्हें धमकियां तक मिलने लगी। मुद्राराक्षस का मानना था कि लेखक कितने ही नेक इरादों से हो, अगर झूठ बोलता है तो वह इतिहास के साथ विश्वासघात करता है। लेखक को सच बोलना ही होगा और सच बोलने के खतरे भी उठाने होंगे। मुद्राराक्षस एक विवेकपूर्ण व्यंग्यकार थे उनकी रचनाओं को पढ़कर लगता है कि उन्हें इतिहास, राजनीति, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र की गहरी परख थी। अपनी अन्य रचनाओं की अपेक्षा मुद्राराक्षस अपने नाटकों एवं व्यंग्यों के कारण अधिक चर्चा का विषय रहते थे। अपने संघर्षशील, निडर एवं रौबदार व्यक्तित्व के कारण वे अपने ऊपर होने वाली आलोचनाओं से कभी डरे नहीं बल्कि समाज के कूपमण्डूकों पर अपने विवेकपूर्ण व्यंग्यों के माध्यम से निरंतर प्रहार करते रहे।

निडरता तो उनके व्यक्तित्व की ऐसी विशेषता थी जिसके कारण उन्होंने कभी भी समाज में व्यापत कुरीतियों एवं अंधविश्वासों से समझौता नहीं किया एवं अपनी व्यंग्य रचनाओं और साहित्य के माध्यम से उसका निरंतर विरोध करते रहे। राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक भर्त्सनाओं का विरोध करने के कारण उन्हें कई बार नक्सली भी समझ लिया गया। "कॉफ़ी हाउस में एक व्यक्ति, जो मुद्रा जी पर कई दिनों से नज़र रखे था, भी आकर आस-पास की टेबल पर बैठ जाता। मुद्राजी समझ चुके थे कि उनका पीछा किया जा रहा है। दरअसल वो कोई सी.बी.आई का इंस्पेक्टर था जिसे मुद्राजी के पीछे सरकार ने ये जानने के लिए लगाया था कि कहीं मुद्राजी नक्सलियों के साथ तो नहीं? एक दिन मुद्राजी ने उसे बैठा देख बुलवाया और उसे बता दिया कि वह समझ चुके हैं कि उनका पीछा किया जा रहा है। मुद्राजी का स्वभाव इतना मधुर था कि कुछ समय में वह भी उनका कायल हो गया।"[12] यह उन दिनों की घटना है जब मुद्राराक्षस आल

इंडिया रेडियो में काम किया करते थे। आल इंडिया रेडियो में काम करने से पूर्व वे कलकत्ता में पत्रकारिता का काम करते थे। 1958 में 'ज्ञानोदय' से इस्तीफा देने के बाद दिल्ली में बस गए। मुद्राराक्षस एवं विवादों का ऐसा संबंध था कि ना चाहते हुए भी वे विवादों में पड़ जाते थे। उन्हीं के शब्दों में "मैं खुद तो विवादों से बचता हूँ लेकिन कुछ बातें ऐसी होती है जो विवादास्पद हो जाती है।" 1962 में उन्हें जब आल इंडिया रेडियो नई दिल्ली से नौकरी का आमंत्रण मिला उस समय वहाँ के कर्मचारियों की हालत कुछ सही स्थिति में नहीं थी अर्थात् बदत्तर थी। कर्मचारियों का मेहनताना उनकी मेहनत के मुनासिब नहीं था और न ही उनकी नौकरी के स्थाई होने की उम्मीद थी। ऐसे समय में उन्होनें ब्राडकास्टिंग का प्रस्ताव स्वीकार किया। मजदूरों की बद से बदत्तर हालत देखकर 1968 में आकाशवाणी कर्मचारी महासंघ के अध्यक्ष बने। मजदूरों की ट्रेड यूनियन बनाकर उनके अधिकारों को एक नई दिशा एवं उर्जा दी। इस ट्रेड यूनियन का नेतृत्व उन्होनें स्वयं करते हुए इस अन्याय का कड़ा विरोध किया। देश की जनता द्वारा इस आंदोलन को काफी सराहा गया। मुद्राराक्षस के इस आन्दोलन की चिंगारी भारतीय जनता पर देखते हुए इसकी चर्चा लोकसभा में की गई एवं उनकी मांगों को मानते हुए सरकार ने कर्मचारियों की तनख्वाह प्रति महीना एक सौ पचास रुपये बढ़ाने के साथ-साथ कर्मचारियों को स्थायी भी किया। इससे कर्मचारियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ। "वह चतुर्थ श्रेणी, कर्मचारियों, कलाकारों, लिपिकों व तकनीकी कर्मचारियों के लिए व्यवस्था और सरकार से भी भिड़ने को तैयार रहते। उन पर मार्क्सवाद का खासा प्रभाव था। वह मार्क्सवाद से स्टूडेंट फेडरेशन के माध्यम से ही जुड़ गए थे। उन्होंने जुलूस, धरना, हड़ताल, प्रदर्शन आदि में भरपूर भाग लिया। मुद्राजी के प्रयासों से उन दिनों आकाशवाणी और दूरदर्शन में एक मजबूत ट्रेड यूनियन संगठित हो चुकी थी जो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से सम्बद्ध थी। उस समय के कबीना मंत्री सत्यनारायण सिन्हा मुद्राजी को नक्सलवादी कहकर व्यंग्य करते थे लेकिन इंद्रकुमार गुजराल, जो उस समय केंद्र सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय में राज्यमंत्री बन चुके थे, इस व्यंग्य का प्रतिवाद करते

थे।"[13] शायद इंद्रकुमार गुजराल ये समझते होंगे कि कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े होने का मतलब नक्सली होना नहीं है। आल इंडिया रेडियो से इस्तीफा देना भी कम विवादास्पद नहीं रहा है। सन् 1976 में आपातकाल के समय एक घटना ऐसी घटी जिसने मुद्राराक्षस को हिला कर रख दिया। इस समय सूचना मंत्रालय में गुजराल जी के स्थान पर विद्याचरण शुक्ल नियुक्त हो गये थे। जिन्होनें आकाशवाणी कर्मचारियों के लिए नियम बनाया कि सुबह दस बजे दफ्तर आयें और उन्होनें हुक्म दिया जो लोग दस बजे के बाद पहुँचे, उन्हें अन्दर न आने दिया जाए और उन्हें अनुपस्थित दिखाया जाए। यह उन के लिए सही था जो दस बजे आते और पाँच बजे चले जाते पर चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, तकनीकी कर्मचारी और कलाकार या तो अपनी शिफ्ट के मुताबिक आते थे या फिर अपने काम के अनुसार। वे सभी परेशान थे क्योंकि उनका एक दिन का वेतन कटना था। चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के लिए एक दिन का वेतन कटना सिर्फ एक दिन का वेतन कटना नहीं होता है। वह उसके पूरे जीवन का नुकसान होता है। जिसकी भरपाई वह ताउम्र भी नहीं कर पाता। मुद्राराक्षस आल इंडिया में पहले टिप्पणीकार बने, फिर सलाहकार, निरूपक और बाद में नाटकों का निर्देशन भी करते रहे। इस नियम के अनुसार दोपहर एक बजे से रात दस बजे तक काम करनेवालों को सुबह दस बजे आने में परेशानी हो रही थी। मुद्राराक्षस ने इसका कड़ा विरोध किया एवं विद्याचरण शुक्ल को यह नियम वापस लेने को कहा। यहाँ एक वाक्या का जिक्र मुद्राराक्षस के शब्दों में ही करना समीचीन होगा, "जब मैं अन्दर पहुंचा तो मैनें देखा बायीं तरफ के लम्बे सोफे पर एक भरा-पूरा, समूचा, ज़िन्दा शेर बैठा हमें तक रहा है। वह बंधा नहीं था पर उसने हम पर हमला नहीं किया। सत्ता के दर्प और शक्ति की उस जिंदा निशानी को देख कर मैंने महसूस किया जैसे मेरी उम्र के लगभग दौ सौ बरस यकायक किसी ने छीन लिये और मैं उस जमाने में खड़ा रह गया जब महाराजा या गवर्नर शेर या चिता लेकर शेर की नक्काशी वाले सिंहासनों पर बैठते थे और भूखे शेर के ज़रिये चीरे जाते इंसान को देखकर खुश होते थे, हँसते थे।" [14] विद्याचरण शुक्ल यह तो मान गये कि शिफ्टों में काम करने वाले लोग हैं, उन्हें शिफ्टों में आने दिया जायेगा पर पैसे न कटने

की बात पर वह राज़ी नहीं हुए। इस बात पर दोनों में झगड़ा हुआ। जिससे कर्मचारी मंत्री का विरोध करने लगे। तब पुलिस आ गई और मुद्राराक्षस को कारावास भी हुआ। इस पूरे मामले पर नेशनल हेरालड के एक पत्रकार ने कहा अब तक हम नागरिक थे और अब प्रजा हो गये हैं। कुछ दिन केस चला और केस खत्म होते होते आपातकाल का असली चेहरा सामने आया। इसी माहौल में एक दिन मुद्राराक्षस को पता चला कि उनका तबादला इंदौर ब्राडकास्टिंग कर दिया गया है। "ये कैसे हो सकता है? मैंने आश्चर्य से कहा मैं जानता था कि पिछले कुछ बरसों में बहुत से अधिकारियों के तबादले मैंने कराए थे और बहुतों के तबादले रुकवाए भी थे। तब मेरा तबादला कौन और कैसे कर सकता था?"[15] अत: इतना सब होने के बाद दुबारा इसी संस्था के साथ नौकरी करना मुद्राराक्षस ने उचित नहीं समझा एवं आल इंडिया रेडियो से इस्तीफा दे दिया। लेकिन, उनका इस्तीफा मंजूर नहीं किया गया। मार्च 1976 में दिया हुआ इस्तीफा आखिर जून के अंत में स्वीकार हुआ। फिर वह दिल्ली छोड़ कर लखनऊ आ गए एवं स्वतंत्र रूप में लेखन का कार्य करने लगे।

स्वतंत्र रूप में लेखन करते हुए उन्होंने अनेक उपन्यास, नाटक, व्यंग्य, कहानियाँ, निबंध आदि लिखे। वे दिन ब दिन सफल रचनाकार के रूप में उभरे। उनके साहित्य में पूंजीपतियों का विरोध, मार्क्सवाद, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, मानवतावाद, वर्गविभेद का विरोध, यौन समस्याओं का प्रभाव दिखता है। कुछ आलोचकों ने मुद्राराक्षस पर भी आरोप लगाया है कि उनकी रचनाओं में सेक्स संबंधी संवाद खुलकर होने की प्रधानता है। लेकिन सेक्स उनके यहाँ मूल कथ्य नहीं है वह स्थिति के अनुसार रूप ग्रहण करता है। यह सच है कि सेक्स के बिना वह जीवन को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। मुद्राराक्षस के यहाँ खुलापन है इसी कारण आवश्यकतावश सेक्स का चित्रण हुआ है। मुद्राराक्षस अपने नाटक योर्स फैथफुली की भूमिका में लिखते हैं, "अंदर से देखने पर स्पष्ट हो सकेगा कि इस नाटक में सेक्स स्वंय एक वक्तव्य है, वह पराजित मन का ऐसा अवशिष्ट जीवन तंतु है जिसमें पात्रों की समझ को बीमार कर दिया है। जिन पात्रों ने सभी हथियार डाल दिए हैं या विवश निहत्था कर दिया गया है वे अगर जनेंद्रिय में ही अपनी जिजीविषा खोजी तो आश्चर्य क्या

है ?"[16] वातावरण के अनुसार परिस्थिति को खुलकर व्यक्त करने मात्र से किसी रचनाकार की नैतिकता पर प्रश्न खड़ा नहीं किया जा सकता। इस बात पर भी गौर करना चाहिए कि अश्लील शब्द किस प्रकार हमारे जीवन का अंग बने रहते है कि हमारा ध्यान भी नहीं जाता है। वही जीवन का अंग फिर लिख देने मात्र से अश्लील कैसे हो सकता है?

मुद्राजी जहाँ विचारों में मार्क्सवादी थे वही लेखन में वे इलियट और काफ़्का की ओर आकर्षित थे। धीरे-धीरे उनके साहित्य पर भी मार्क्सवाद एवं यथार्थवाद का प्रभाव बढ़ने लगा। इनका साहित्य अनिवार्यतः सोद्देश्य है, एवं उसके उद्देश्य निश्चित है-सर्वहारा वर्ग को क्रांति के लिए तैयार करना, शोषक वर्ग के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करना तथा कुल मिलकर समाजवाद तथा साम्यवाद की स्थापना में सक्रिय भूमिका देना। मुद्राराक्षस ने अपने जीवन में वर्ग वैषम्य के नरक को झेला था। इस नरक के आधार पर ही उन्होंने उपन्यास लिखा-'नारकीय' जिसकी भूमिका में लिखते हैं, "समृद्ध समाज जिन लोगों के जीवन को, हर्बर्ट माक्यूस के शब्दों में, नरक बनाता है और जो इस नरक से बाहर आने के लिए संस्कृति और साहित्य की नसेनी का सफल या असफल इस्तेमाल करते हैं, यह उपन्यास कमोबेश उनकी पड़ताल की एक कोशिश है। यह उन लोगों को पहचानने का एक प्रयत्न भी है जो इस नरक को ध्वस्त करने के लिए साहित्य और संस्कृति को अपना औजार बनाते हैं। यह उपन्यास उन्हें भी परखने का एक उपक्रम है जो नरक से मुक्ति की क़ीमत पर अपने सहजीवियों की मुखबिरी करते हैं। पर कुछ ऐसे भी होते हैं जो यह सब नहीं करते। बस, नरक को और ज्यादा नारकीय बनाते हैं।"[17] इनकी दृष्टि शोषितों की समस्याओं को अपने साहित्य के माध्यम से देखने में पूरी ईमानदारी से सक्रिय रही है। साथ ही वह यह मानते हैं कि मजदूर, कृषक, दलित, शोषित आदि के पक्ष में लिखे होने से ही कोई रचना साहित्य नहीं होता। उसे रचने की मौलिक शर्तें पूरी करनी होती हैं। यही कारण है कि रचनात्मक लेखन अलग होता है और सफल लेखन अलग। मुद्राराक्षस सफल नाटककार होने के साथ-साथ सफल निर्देशक भी थे। लेकिन उनका यह भी मानना था कि लेखक को स्वयं अपना नाटक नहीं करना चाहिए क्योंकि

नाटक का सबसे ख़राब निर्देशक वह स्वयं होता है। 'मरजीवा' मुद्राजी का आरंभिक नाटक है। जिसका प्रदर्शन 1966 में मुद्राजी ने स्वंय किया। मरजीवा नाम नागार्जुन द्वारा दिया गया था। नाटकों से मुद्राराक्षस नेमिचंद्र जैन की वजह से जुड़े थे और सफल नाटककार के रूप में ख्याति प्राप्त की। लेकिन, नेमिचंद्र जैन मानते थे संगठनों, संघपरिवारों, सामाजिक आंदोलनों में संलग्न रहने से वे अपने साहित्य को समय नहीं दे पायेंगे। परन्तु उनके अनुसार जो सत्य उन्हें मजदूर आंदोलन से मिला उसने ही उनके लेखन को भाषा दी। मुद्राराक्षस ने नाटककार के रूप में खूब ख्याति बटोरी एवं अनेक नाटकों की रचना की जिसमें मरजीवा, संतोला, तिलचिट्टा, योर्स फैथफुली, आला अफसर और तेंदुआ शामिल है। 'आला अफसर' तो हिंदी में व्यापक लोकप्रियता और स्तरीय रचनात्मकता का अद्भुत उदहारण है। इसकी लोकप्रियता अभूतपूर्व है जिसने भारत के हर कोने के रंगकर्मियों और दर्शकों को आकर्षित किया। यह नाटक भ्रष्ट नौकरशाही के विकृत रूप एवं उसका प्रभाव एक मजलूम पर किस हद तक पड़ सकता है, इसका जीता-जागता प्रमाण है। यह नाटक गोगोल का सुप्रसिद्ध नाटक 'थे गवर्नमेंट इंस्पेक्टर' का अनुवाद है, जिसे मुद्राराक्षस ने हिन्दुस्तानी नौटंकी का रूप दिया है। इसके भारत की अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हुए और उन्होनें भी दर्शकों को आकर्षित किया। भारतीय रंगमंच के विदेशी अध्येताओं ने इसे एक गहरे आश्चर्य से देखा और विदेशी पुस्तकों में विस्तार से इस नाटक की चर्चा हुई। इस क्रम में यू.एस की वर्जीनिया यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर राबर्ट हक्सटैड ने मुसहर जाति पर लिखा गया उपन्यास 'दंड-विधान' 'The Hunted' नाम से अंग्रेजी में अनुवादित किया। मुद्राराक्षस की अनूदित कृतियों में सबसे अधिक प्रसिद्धि आला अफसर ने पाई है। सबसे लम्बी अवधि तक इस नाटक की प्रस्तुतियां मुंबई जैसी व्यावसायिक रंगमंच की नगरी में हुई। 70 का दशक नाटक के क्षेत्र में हबीब तनवीर, ब.व.कारंत, जब्बार पटेल और रतन थियम जैसे दिग्गजों के प्रभावशाली प्रयोगों का दौर था। कुछ अन्य कलाकार जो मुद्राजी के साथ नाटकों से जुड़े हुए थे उनमें नसीरुद्दीन शाह, कुलभूषण खरबंदा और ओम पुरी आदि विशेष नाम हैं जो बाद में मुंबई

चले गए। अस्सी के दशक में हिंदी नाटक लेखन की स्थिति काफी दुखद होने लगी थी। अहिन्दी भाषी रंगकर्मियों ने कविता, कहानी, उपन्यास का मंचन प्रारंभ कर दिया। ये कोई प्रयोग नहीं था बल्कि हिंदी नाटकों पर काम करने वाले लेखकों की रॉयल्टी से बचने का एक तरीका था। हैरान करने वाली बात ये थी कि इस स्थिति का रंग समीक्षकों ने भी समर्थन किया। सरकारी अनुदान से होने वाले नाटकों में भी लेखक की रॉयल्टी को नज़रअंदाज़ किया जाने लगा। यहाँ तक की अहिन्दी भाषी रंग-निर्देशकों ने लेखक को उसके नाटक के प्रदर्शन की सूचना देना भी उचित नहीं समझा। निर्देशक ही लेखक भी बन गया। वह किसी भी आलेख को उठाकर उस पर आधारित अपना नाटक लिखने लगा। इस स्थिति पर किसी भी हिंदी समीक्षक ने कोई टिप्पणी नहीं की। इस स्थिति से खिन्न होकर मुद्राजी ने नाटक कभी ना लिखने का फैसला किया। ऐसा केवल उन्होनें ही नहीं किया बल्कि उस वक़्त के कई अफसर और लेखकों ने भी नाटक लिखना बन्द कर दिया। इस विषय में आला अफसर की भूमिका में लेखक लिखते हैं, "राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय एक ऐसी फैशनपरस्त संस्था है जो न तो नाटक की गहरी समझ देती है और न ही सामाजिक विवेक की। वह छंद और अलंकार सिखाकर कवि पैदा करने की कोशिश करती है। उसका ख्याल है कि छात्र पढ़कर रचनाधर्मी होता है। कभी विश्वविद्यालयों के कला-निकायों का भी यहीं मुगालता हुआ करता था। बाद में इसका भेद खुल गया। जिस तरह साहित्य में एम.ए. पढ़कर कोई साहित्यकार नहीं होता, उसी तरह नाट्य विद्यालय का स्नातक होकर भी रंग-रचनाकार नहीं हुआ जाता।"[18]

मुद्राराक्षस अपने साहित्य की दुनिया में जितने लेखन के प्रति ईमानदार, आक्रामक और तेज़ थे, वहीं परिवार, मित्रों के लिए उतने ही भावुक। अपने मित्रों गौरी शंकर कपूर, बीर राजा, श्रीलाल शुक्ल (जिनके साथ उनके अनेको मतभेद रहे पर मनभेद कभी नहीं रहा), राजेन्द्र यादव, कुबेर दत्त, डॉ. कांता पन्त, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रमाकांत, गौरीशंकर कपूर और रघुवीर के चले जाने के बाद इतने विचलित, परेशान और अकेले पड़ गये कि धीरे-धीरे लिखना भी कम हो गया। वे लिखते हैं कभी कभी जो कुछ चला जाता है उसके बारे में सोचना भी इतना तकलीफ देह होता

है कि उधर देखने की हिम्मत बटोर पाना मुश्किल होता है। 2013 में राजेंद्र यादव के जाने के बाद तो वे इतने टूट गये कि उन्होंने अपनी पत्नी इंदिरा से कहा कि मेरे सारे दोस्त चले गए मैं ही रह गया। उनके लिए यह सब बहुत ही कष्टदायक था।

उनके साहित्यिक एवं सांसारिक जीवन में बहुत से लोगों ने उनका साथ दिया तो बहुत से लोगों ने उनका साथ बीच में ही छोड़ दिया। मुद्राराक्षस का साथ देने का मतलब था सत्ता और व्यवस्था से सीधे टकराना। सत्ता और व्यवस्था से सीधे टकराने के कारण ही उन्हें आकाशवाणी से नौकरी छोड़नी पड़ी, प्रेमचंद पर लिखी टिप्पणी के कारण ही उन्हें आकाशवाणी से नौकरी छोड़नी पड़ी, प्रेमचंद पर लिखी टिप्पणी के कारण मुद्राराक्षस को प्रगतिशील लेखक से प्रतिबंधित कर दिया गया क्योंकि प्रेमचंद तर्क का विषय न होकर साहित्यिक दुनिया में श्रद्धा के विषय हैं जिनके विरुद्ध बोलकर कोई मनुष्य देशद्रोह के समान अपराध कर देता है। यही अपराध करने की हिमाकत मुद्राराक्षस ने की थी। कुछ लेखकों ने उनका खुलकर विरोध न करकर नज़रअंदाज करना शुरू कर दिया था। मुद्राराक्षस इन घटनाओं से निराश अवश्य हुए लेकिन विचलित नहीं हुए। मुद्राराक्षस राजनैतिक एवं साहित्यिक दुनिया में खलबली मचाने वाले ऐसे लेखक थे जिन्हें सरकार की तरफ से कई बार लुभावने अवसर मिले। लेकिन, वह तो सत्य को लिखने एवं जीने वाले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होनें 'शब्द और कर्म' की एकता को कायम करते हुए अपने जीवन का मार्ग स्वंय निर्धारित किया। अगर उन्होनें ऐसा न किया होता और लुभावने अवसरों का फायदा उठाया होता तो आज मुद्राराक्षस, मुद्राराक्षस न होकर केवल गुमनाम सुभाषचंद्र गुप्ता होते। भानु भारती जो रंगमंच दुनिया के मशहूर हस्ती हैं उन्होनें मुद्राराक्षस की स्मृति में लिखा, "Mudrarakshas was essentially unconventional and bold in his selection of themes at a time when hindi writing was conservative and inhibiting. He experimented with themes which were not attempted by his contemporaries"[19] साहित्य की दुनिया में मुद्राराक्षस को बेबाकी से अपनी बात कहने वाला

योद्धा माना जाता है। नेहरु से लेकर मोदी तक की व्यवस्था पर सवाल उठाये। विद्रोह का यह विराट हस्ताक्षर इस दुनिया पर अपने बेबाकीपन, राजनैतिक एवं सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध स्वर को प्रबल करने की दिशा देते हुए 13 जून 2016 को रुखसत हो गए। यह निश्चित है जब-जब समय बिगड़ेगा, मुद्राराक्षस की याद आयेगी। उन्हीं के शब्दों में 'यह ऐतिहासिक पाप होगा, अगर हम चुप रहे। बदलाव का इतिहास रचने के लिए लड़ाई में उतरना जरूरी है। हमें इसलिए लिखना है ताकि जो लड़ रहे हैं, उनका भरोसा न टूटे।' यही कारण है कि साहित्य और साहित्यकार की समझ रखने वाले लोग उन्हें बुद्ध, कबीर और ग़ालिब के बराबर दर्ज़ा देते रहे हैं।

1.2 मुद्राराक्षस की रचनाएँ :

मुद्राराक्षस ने 'शब्द और कर्म' को एक ही मानते हुए साहित्य का सृजन किया। इनके साहित्य का कथानक इनके जीवन में घटने वाली घटनाओं से ही प्रेरित है। मुद्राराक्षस सफल नाटककार, व्यंग्यकार के साथ-साथ सफल कहानीकार, उपन्यासकार, संपादक के रूप में भी जाने जाते हैं। इन्होनें अपने साहित्य का आरम्भ कवि एवं आलोचक के रूप में किया। ये अलग बात है कि इन्होनें अपनी आरंभिक कविताओं एवं आलोचनाओं को छपवाया नहीं। मुद्राराक्षस का व्यक्तित्व अपने में अनोखा है। जिन्हें पैदल यात्रा का शोक लेकिन ट्रेन यात्रा, टेलीफोन और पत्र लेखन से घबराहट। पेड़-पौधों, पशुप्राणियों को पालने का शौक़। या तो घोर एकांत प्रिय या भीड़ प्रिय। फॉसिल के संग्रह का शौक और पुस्तकालय न जा कर जरुरत की किताबों का अपना विशाल संग्रह। इनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही इनका रचना संसार है।

नाटक : मरजीवा, तेंदुआ, तिलचट्टा, योर्स फैथफुली, आला अफसर, मरजीवा, गुफाएँ, संतोला, रंगभूमिकाएं, डाकू, गिनीपिग।

उपन्यास : लिबिड़ो, मैडेलीन, मकबरा, अचला एक मन:स्थिति, शांति भंग, भगोड़ा, हम सब मंसाराम, नारकीय, दंडविधान, अर्धवृत्त, हस्तक्षेप, शोक संवाद, शब्द दंश, मेरा नाम तेरा नाम, ग्यारह सपनों का देश।

कहानी संग्रह : प्रतिहिंसा तथा अन्य कहानियाँ, 21 श्रेष्ठ कहानियाँ, 10 प्रतिनिधि कहानियाँ, मुद्राराक्षस संकलित कहानियाँ, श्रेष्ठ दलित कहानियाँ (संपादन)।

हास्य व्यंग्य : मथुरादास की डायरी, राक्षस उवाच, प्रपंच तंत्र, सुनो भाई साधो।

अंग्रेजी साहित्य : The hunted, Re-reading Jesus

समीक्षा, निबंध, आलोचना, संस्मरण : धर्मग्रंथों का पुनर्पाठ; मुद्राराक्षस सृजन एवं संदर्भ; भारतीय अर्थतंत्र निशाने पर; बहस चौराहे पर; समाज, संस्कृति और राजनैतिक सत्ता; बीच बहस में-स्त्री, दलित और जातीय दंश; आलोचना और रचना की उलझने; आलोचना का समाजशास्त्र; कालातीत (संस्मरण); भगत सिंह होने का मतलब; नेमिचन्द्र जैन; धर्म बनाम अंधविश्वास; भारतीय संस्कृति और वामपंथ; साहित्य-समीक्षा परिभाषाएं और समस्याएं।

बाल साहित्य : चिंटीपुरम के भूरेलाल; सरला बिल्लू और जाला।

संपादन : ज्ञानोदय, अनुव्रत, छायानट, बेहतर, आकाशवाणी नाटकों का सम्पादन।

फेलोशिप : उत्तर प्रदेश के लोक संगीत रूपक जीवन सिंह के स्वांग के पुनरुज्जीवन, नवीनीकरण एवं प्रस्तुति के लिए केंद्रीय सरकार के सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय की सीनियर फ़ेलोशिप।

उपाधियाँ : अवध रत्न शुद्राचार्य, लोक नाट्य शिरोमणि, कमर कहकशा, दलित रत्न।

पुरस्कार : साहित्य भूषण, कैफी आजमी अवार्ड, केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी, राष्ट्रीय पुरस्कार, सर्वोदय साहित्य सम्मान, संगीत नाटक अकादमी रत्न सदस्यता अवार्ड, कल्चरल रिवाल्यूशन अवार्ड, दलित रत्न, अकादमी रत्न, अम्बेडकर इंडिया सम्मान, अवध रत्न, नाट्य शिरोमणि। मुद्रा जी ने एक पाब्लो नरूदा सम्मान नाम से पुरस्कार भी शुरू किया।

संक्षेप में, मुद्राराक्षस भारतीय, पाश्चात्य साहित्य के साथ-साथ राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र के भी गहरे पारखी थे। इनका लेखन गैर-पारम्परिक, अनोखा और अपनी तरह का अनूठा है। उन्होनें अपना रास्ता स्वयं बनाया और किसी भी परम्परा और शैली का अनुगमन नहीं किया। वे अकेले ऐसे लेखक थे, जिनके सामाजिक सरोकारों के लिए उन्हें जन संगठनों द्वारा सिक्कों से तोलकर सम्मानित किया गया। उनका संघर्ष केवल लेखन में नहीं था, जीवन व्यवहार में भी वह लगातार उन बुराइयों के खिलाफ लड़ते रहे जो भारतीय समाज को विभिन्न धड़ों में बांटती है। एक जाबांज योद्धा के जैसे उन्होंने कलम को पूरी ताकत से इस्तेमाल किया।

संदर्भ

1. मुद्राराक्षस; आला अफसर; राधाकृष्ण प्रकाशन, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2017; पृ.23
2. मुद्राराक्षस; नारकीय; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 2009; पृ.35
3. सिंह, कृष्ण प्रताप; तर्क, विवेक, विज्ञानबोध और मुद्राराक्षस; बहुवचन (सं. अशोक मिश्र); महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा; संस्करण: जनवरी-मार्च, 2017; पृ.26
4. मुद्राराक्षस; आला अफसर; राधाकृष्ण प्रकाशन, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2017; पृ.10
5. मुद्राराक्षस, रोमेल; मुद्राराक्षस साहित्य वीथिका; मुद्राराक्षस हिन्दी साहित्य फाउंडेशन, 2016, सोलिटेयर टावर, पैरामाउंट सिम्फनी, क्रासिंग रिपब्लिक, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश; संस्करण: 2017; पृ.18
6. वही; पृ.18
7. वही; पृ.34
8. वही; पृ.40
9. वही; पृ.41
10. वही; पृ.10
11. वही; पृ.44
12. वही; पृ.28
13. वही; पृ.46
14. मुद्राराक्षस; नारकीय; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 2009; पृ.221
15. वही; पृ.228
16. मुद्राराक्षस; योर्स फैथफुली; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 2009; भूमिका
17. मुद्राराक्षस; नारकीय; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 2009; पूर्व वृतान्त्क

18. मुद्राराक्षस; आला अफसर; राधाकृष्ण प्रकाशन, 7/31,अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002; संस्करण: 2017; पृ.17
19. http://www.thehindu.com/features/friday-review/He-took-on-hypocrisy/article14425993.ece Date: 24.05.2018

द्वितीय अध्याय

सांप्रदायिकता : अवधारणा एवं स्वरूप

द्वितीय अध्याय

सांप्रदायिकता : अवधारणा एवं स्वरूप

2.1 सांप्रदायिकता : अर्थ एवं स्वरूप :

हमारे मस्तिष्क में सांप्रदायिकता शब्द जिस रूप में है वह है हिंसा, मार-काट। अगर इस शब्द के इतिहास में जा कर देखें तो यह शब्द हिंसा का स्वरूप नहीं है। इसकी उत्पत्ति 'संप्रदाय' शब्द से हुई है। राजनीति कोश के अनुसार

1. ''यूरोप राजनीति के प्रसंग में 'काम्युन्लिज्म' शब्द का अर्थ वह व्यवस्था थी जिसमें कम्यूनो अथवा इसी तरह की छोटी-छोटी राजनीतिक इकाइयों को केन्द्रीय सरकार की ओर से पर्याप्त विधाई शक्तियां प्राप्त रहती थी।

2. बीसवीं शताब्दी से अंग्रेजी भाषा में यह शब्द एक ही राज्यक्षेत्र में निवास करने वाली विभिन्न जातियों के बीच संघर्ष अथवा तनाव की स्थिति का वाचक हो गया। भारतीय राजनीति में हिंदू-मुसलमानों को सांप्रदायिक समस्या के संदर्भ में इस शब्द को विशेष ख्याति मिली। भारत में सांप्रदायिकता का अर्थ रहा है, वह गुट-मानसिकता जो स्वयं को किसी धार्मिक संप्रदाय के ऊपर आधारित करती है, लेकिन जिसका वास्तविक उद्देश्य संबदध् गुट के लिए राजनीतिक शक्ति और संरक्षण प्राप्त करना होता है। भारत में सांप्रदायिकता अंग्रेजों के साथ-साथ आई और वह 'फूट डालो तथा राज्य करो' की साम्राज्यवादी नीति का प्रत्यक्ष फल थी। इस नीति के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारत में पृथक सांप्रदायिक निर्वाचनों की व्यवस्था आरंभ की और अंततः मुसलमानों को अपना एक पृथक राष्ट्र पाकिस्तान बनाने की दिशा में प्रेरित किया।''[1] इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि शुरूआती दौर में सांप्रदायिकता का धर्म से कहीं दूर तक भी कोई रिश्ता नहीं था। संबंध आज भी नहीं है। पहले विदेशी ताकतों ने हमारे देश की अखंडता को भंग करने के लिए धर्म के नाम पर जनता को आपस में

भिड़वाया। आज हमारे ही नेता अपने स्वार्थ के लिए ये काम कर रहे हैं। यह कोरा भ्रम है कि धर्म और सांप्रदायिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। धर्म और सांप्रदायिकता का कोई संबंध नहीं है। अगर धर्म और सांप्रदायिकता का संबंध होता तो आज हर धार्मिक व्यक्ति सांप्रदायिक होता एवं सांप्रदायिकता फैलाने वाले असमाजिक तत्व धार्मिक होते। लेकिन यह देखा गया है कि सांप्रदायिक मनुष्य को धर्म से तो कोई लेना-देना ही नहीं होता। उसका उद्देश्य तो मात्र हिंसा करना, लोगों में खौफ पैदा करना होता है, आम तौर पर यह देखा गया है कि सांप्रदायिक वे होते हैं जिनको धर्म का सही ज्ञान नहीं होता। दरअसल धर्म का संबंध आस्था से है। यहां अपनी बात की पुष्टि के लिए इतिहास के दो महापुरूषों को लेना उचित होगा जिसके माध्यम से यह स्पष्ट हो सके कि धर्म और सांप्रदायिकता का कोई संबंध नहीं है। गांधी जी जो धार्मिक व्यक्ति थे वह कभी भी विभाजन के पक्ष में नहीं रहे, वहीं जिन्ना जो कुरान के नियमों के पाबंद नहीं रहे एक धर्म बहुल के आधार पर अलग राष्ट्र चाहते थे। आगे इसी एक धर्म बहुल और भाषा के आधार पर खालिस्तान की माँग हुई; खालिस्तान की माँग करने वाले ये अकाली दल के नेता अपने धार्मिक ग्रंथ से पूरी तरह परिचित नहीं थे। अगर परिचित होते तो गुरुद्वारा जैसे पवित्र स्थान में हथियार कतई नहीं रखते और धर्मग्रह को हिंसागृह नहीं बनाते। कोई भी धर्म हिंसा करना नहीं सिखाता। किसी भी धर्म ग्रंथ (गीता, कुरान, बाइबिल) में भी यह उल्लेख नहीं है कि अपने धर्म को स्थापित करने के लिए आप दूसरे धर्म के व्यक्ति के साथ हिंसा करे। स्वयं की रक्षा का उल्लेख अवश्य है। सभी धर्म ग्रंथ यही उपदेश देते हैं कि धर्म के रास्ते पर चलते हुए उनसे लड़ो जो धर्म के खिलाफ है परंतु आक्रांत न बनो यह निश्चित है कि कोई भी धर्म ग्रंथ आक्रांताओं को नहीं चाहता। लेकिन स्वयं की रक्षा को हिंसा से जोड़ना मूर्खता है। सांप्रदायिकता धर्म की नहीं स्वार्थ की राजनीति का फल है। वैसे भी धर्म का संबंध आस्था से है, राजनीति से नहीं।

रामधारी सिंह दिनकर 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखते हैं ''सांप्रदायिकता संक्रामक रोग है। जब एक जाति, भयानक रूप से सांप्रदायिक हो उठती है, तब दूसरी जाति भी अपने अस्तित्व का ध्यान करने लगती है और उसके भाव भी शुद्ध नहीं रह जाते।''[2] किसी एक व्यक्ति की गलती की सजा उसकी पूरी कौम को देना कहां की इंसानियत है। यह कैसी इंसानियत है कि औरंगजेब, गजनवी और गौरी ने मंदिर ढहाए थे इसलिए हम उनकी कौम की अगर एक मस्जिद भी ढहा दे तो इसमें क्या गुरेज है। एक सिख ने इंदिरा गांधी को मारा तो इसका बदला दूसरे सिखों से लिया जाए। ये कुंठित मानसिकता ही सांप्रदायिकता है। इसे थोड़ा विस्तार से समझाया जा सकता है। इस्लाम के प्रति हिन्दुओं की घृणा उस समय पनपी जब महमूद गजनवी ने इस देश के मंदिरों को लूटा। किंतु हमें सिर्फ सुनी सुनाई बातों को अंधाधुंध नहीं मानना चाहिए बल्कि इतिहास का गहराई से अध्ययन कर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि गौरी हो या गजनवी इतिहास में उन्हें सच्चे इस्लाम का प्रतिनिधित्व नहीं माना गया है। ये इस्लाम के सेवक नहीं थे मात्र लुटेरे थे और लुटेरों का कोई धर्म नहीं होता है। लुटेरों की प्रवृत्ति धन लूटकर आनंद मनाने की होती है और यही प्रवृत्ति इनकी थी। हमें इस बात की गहराई को भी समझना चाहिए कि मात्र अपने लोभ को छुपाने के लिए ये लोग इस्लाम की दुहाई देते और मूर्ति पूजा का खंडन करते थे। इस्लाम को इन्होंने अपने लोभ को छुपाने का मात्र एक आवरण बनाया इतिहास के कुछ पन्नों को पलटते हुए एक बात का उल्लेख करना चाहूंगी कि जैसे हमें विदित है कि गजनवी ने भारत पर सत्तर बार चढ़ाई की लेकिन इन चढ़ाइयों में इस्लाम का प्रचार उसने कुछ भी नहीं किया। इतिहास इतना ही जानता है कि वह इस देश का धन लूटने को आता था और यहां की लूट से उसने अपनी राजधानी को मालामाल किया। रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं, ''तैमूरलंग ने जब हिन्दुस्तान की और नजर डाली तब कहते हैं, लोगों ने उससे कहा कि हिंदुस्तान जाने की ऐसी क्या जरूरत हो सकती है, वहां तो मुसलमानों का राज्य पहले से ही मौजूद है। किंतु, राज्य मुसलमानों का हो या हिंदुओं का, तैमूरलंग भारत की समृद्धि

को लूटने के लिए बेकरार था।''[3] इतिहास गवाह है जब इस देश पर मुगलों का आक्रमण हुआ, तब पठान और राजपूत आपस में दोस्त हो गए और यह दोस्ती काफी दिनों तक चलती रही। हल्दीघाटी में महाराणा प्रताप की सेना की एक पंखी बिल्कुल पठानों की थी और ये पठान महाराणा के प्रति अत्यंत वफादार थे। अक्सर एक बात कही जाती है कि मनुष्य को अपने वर्तमान में जीना चाहिए। पूर्व में की हुई गलतियों से सीख लेते हुए वर्तमान को सुधारना चाहिए। लेकिन, लगता है भारत अपने इतिहास के काले पन्ने मिटाना ही नहीं चाहता है। समस्या यह है कि हिन्दुओं की मानसिक कठिनाई यह है कि इस्लाम का अत्याचार उन्हें भुलाए नहीं भूलता और मुसलमान यह सोचकर पस्त है कि जिस देश पर उनकी कभी हुकूमत चलती थी, आज वहीं उन्हें अल्पसंख्यक बनकर रहना पड़ रहा है। प्रजातंत्र में ऐसा तो कोई तरीका नहीं बनाया गया है जिसमें अल्पसंख्यक बहुसंख्यक हो जाए। हाँ यह जरूर है कि अल्पसंख्यकों की जायज मांगों को सुना जाये एवं उनकी पूर्ति की जाये। समझ नहीं आता कि लोगों के मस्तिष्क में गजनवी, गौरी जैसे लोग क्यों अपना प्रभाव डाले हुए हैं। लोग इन पठानों का जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, हसरत मौहानी, मौलाना आज़ाद जैसे स्वतंत्रता सेनानियों को क्यों भूल जाते हैं। अगर रूट लेवल पर आकर देखा जाए तो आम हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई एक दूसरे से नफरत नहीं करता है। साहित्य में अनेको ऐसी रचनायें मिल जायेंगी, ऐसी फिल्में मिल जायेंगी जो विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच सौहार्द को प्रकट करती हैं। ये बड़ी ही विचलित करने वाली बात है कि कुछ असामाजिक तत्व और इस देश के प्रतिनिधित्व मात्र अपने स्वार्थ के लिए भड़कीले भाषणों के द्वारा जनता में वैमनस्य का माहौल पैदा करते हैं एवं विभिन्न धर्मों के लोगों को अपने वोटबैंक के लिए भिड़वाते हैं।

यह निश्चित है की सांप्रदायिकता और धर्म का कोई मेल नहीं है। लेकिन, सांप्रदायिकता का केन्द्र धर्म होता है। सांप्रदायिकता को धर्म के केंन्द्र में रखना एक सुनियोजित चाल है। जिसे हमारे देश की जनता को समझना होगा। यह विदित है कि शारीरिक चोट से ज्यादा आघात

मानसिक चोट पहुंचाती है और धर्म आस्था का विषय है। आस्था का संबंध हृदय से होता है, भावना से होता है। यही कारण है कि धर्मस्थलों को चोट पहुंचाकर, किसी एक धर्म पर ओछे भाषण देकर उस धर्म की आस्था पर सवाल उठाकर एक धर्म को दूसरे धर्म के प्रति भड़काया जाता है। गोकि धर्म भावना से जुड़ा हुआ है इसलिए धर्मस्थलों को चोट पहुंचाकर लोगों की धार्मिक भावना से खेलना आसान होता है। जैसा कि मार्क्स ने कहा है धर्म अफीम का काम करता है। जिस प्रकार अफीम मनुष्य के विवेक को नष्ट कर देता है वैसे ही धर्म की समझ न रखने वाला समाज एवं व्यक्ति अपने विवेक को खो बैठता है एवं समाज को असभ्यता की ओर धकेल देता है। धर्म, अफीम आदि नशीले पदार्थों की तरह पीड़ा को भुलाता है और हमें सुलाता है। वह पीड़ा दूर नहीं करता। उसका उपचार नहीं करता। यह उपचार सांस्कृतिक जीवन से ही संभव है। पैसे वालों के लिए तो धर्म तेज शराब का काम करता है और उन्हें नशे में पागल कर हत्याओं और क्रूरताओं के लिए प्रेरित करता है। कुरआन में जिहाद शब्द का इस्तेमाल हिंसा या युद्ध के अर्थ में नहीं किया गया है। समस्या यह है कि हम धार्मिक और राजनीतिक मुद्दों में भेद करना नहीं जानते हैं। क्या राजनीति है? क्या धर्म है? हमें इसकी समझ ही नहीं है। अंतर तो तब करेंगे जब इनके बीच के अंतर को समझेंगे। कई मुसलमानों और हिंदुओं ने अपने राजनैतिक हितों के लिए कुरआन और गीता के सिद्धांतों का दुरुपयोग किया, जैसा कि अनेक आतंकवादी करते हैं। आतंकवादी शब्द भी बड़ा मजेदार है क्योंकि कोई व्यक्ति जो किसी की नजर में आतंकवादी होता है वही किसी की नजर में स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाला होता है। अब हमें इन दोनों बातों को भी समझना चाहिए कि धर्म के लिए लड़ने वाला व्यक्ति या समाज कभी भी निर्दोष लोगों की जान नहीं लेता है क्योंकि भगवान, अल्लाह, ईसा एवं गुरु नानक साहब कभी भी हिंसक या आक्रांत व्यक्ति को नहीं चाहते। राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिहाद शब्द के इस्तेमाल की इजाजत पैगंबर साहब कभी नहीं देते। अगर जिहाद शब्द का अर्थ ही समझना है तो सूफी संतों से समझना चाहिए। सूफी

संतो जैसे राजनीतिक सत्ता संघर्ष से दूर मुसलमानों ने जिहाद को एक नया अर्थ दिया। सूफियों के अनुसार इस्लाम का आधार मोहब्बत और अमन का संदेश है और जिहाद अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण करने का आत्मिक संघर्ष है। दूसरे शब्दों में, जिहाद हमारे अंदर उठने वाली स्वार्थपूर्ण इच्छाओं के खिलाफ युद्ध है। हिंसा की आवश्यकता हमें कब पड़ती है? पशु को हिंसक क्यों कहा जाता है? क्योंकि वह अपनी रक्षा के लिए दूसरे पर हमला करता है वैसे भी पशुओं में वह विवेक नहीं जो मनुष्य में होता है। स्पष्ट है जब हम दूसरों पर नियंत्रण करना चाहते है तब व्यक्ति हिंसक होता है। सूफियों का स्वयं पर नियंत्रण था इसलिए वे हिंसा से दूर रहते थे। वहीं राजनेता दूसरों पर नियंत्रण कायम करना चाहते है इसीलिए वह हिंसा का सहारा लेते हैं।

धर्म जिसका सांप्रदायिकता से कोई संबंध नहीं है फिर भी इसके केंद्र में धर्म ही है। तो यह जरूरी हो जाता है कि हम धर्म को समझें कि धर्म क्या है? इसकी आवश्यकता क्यों पड़ी। आज के वैज्ञानिक दौर में भी धर्म वही है जो आदिम युग में था। मोटे तौर पर देखें तो धर्म तो सदा से एक ही रहा है जिसका उद्देश्य अमन, चैन, प्यार, सौहार्द एवं लोगों को सही मार्ग दिखाना रहा है। लेकिन, मनुष्य इतना स्वार्थी प्राणी है कि उसने अपना स्वार्थ साधने के लिए इसके अर्थ एवं स्वरूप को अपनी सुविधा एवं अपने हितों के अनुसार इसकी समय-समय पर अलग-अलग व्याख्या की। इस शब्द का अर्थ इतना विकृत किया गया और सब धर्मों से अलग रहने के बजाय सब धर्मों को समान मानने का अर्थ लगाया गया। गांधी जी ने सत्य को ही ईश्वर माना है ना कि ईश्वर को सत्य गांधी जी अपनी पुस्तक हिंदू धर्म क्या है? में कहते हैं, ''यदि मुझसे हिंदू-धर्म की व्याख्या करने के लिए कहा जाये तो मैं इतना ही कहूंगा- अहिंसात्मक साधनों द्वारा सत्य की खोज। कोई मनुष्य ईश्वर में विश्वास न करते हुए भी अपने-आपको हिंदू कह सकता है। सत्य की अथक खोज का ही दूसरा नाम हिंदू-धर्म है।''[4] नेहरू जी के अनुसार, ''धर्म की मुख्य भावना यह जान पड़ती है कि अपने को जिंदा रखो और दूसरे को

भी जीने दो।''[5] अर्थात् जिसने सत्य को पा लिया उसने ईश्वर को पा लिया तथा ईश्वर की खोज में सर पटकने की आवश्यकता नहीं। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने माना कि ''जो विचार, व्यवहार और उपचार स्वतंत्रता के साथ समता का आश्वासन देगा, वही उनका सत्य, शिव और सुंदर होगा।''[6] वहीं राममनोहर लोहिया के अनुसार स्वतंत्रता, समता और बंधुता के सर्वोपरि मानव-मूल्यों पर आधारित समाज के विकास में धर्म सबसे बड़ी बाधा है। भारत के संदर्भ में इस बात को अधिक स्पष्टता से देखा जा सकता है। यहां धर्म ने वर्णव्यवस्था के नाम से ऐसी समाज-व्यवस्था बनाई जिसने दलित, पिछड़े, आदिवासी समूहों को और सभी वर्णों की स्त्रियों को तमाम मानवीय अधिकारों से वंचित रखा। जब-जब इन समूहों ने ऊपर उठने और बराबरी का दर्जा हासिल करने के प्रयास किए तब-तब धर्म का उन्माद खड़ा कर इन प्रयासों को विफल किया गया। हमें यह समझना होगा कि धर्म को आड़े लाकर कैसे एक व्यक्ति, समाज और देश की प्रगति को रोका जाता है। धर्म की आड़ में समाज की प्रगति को रोकने का सिलसिला पुराने समय से ही चला आ रहा है। यह तो हम भली भांति जानते हैं कि सुधार लाने के लिए आंदोलनों की आवश्यकता पड़ती है और आंदोलन लोकतंत्र का प्रतीक होते हैं। हमें यह भी समझना चाहिए कि धर्म के नाम पर होने वाले दंगों में सिर्फ बेगुनाह या नैतिकता की ही मौत नहीं होती बल्कि नैतिकता की हर मौत के साथ-साथ लोकतंत्र भी मरता है। लोकतंत्र के मरने के प्रत्यक्ष उदाहरण हमें बँटवारे, राममंदिर का निर्माण, 1984 के सिक्ख दंगे, मुजफ्फर नगर का दंगा में देखने को मिलते हैं। अगर हम मध्यकाल में ही नजर डाले तो संतो के आंदोलनों को जहां तुलसी की राम-भक्ति ने विफल किया वहीं उन्नीसवीं शताब्दी के समाज-सुधार आंदोलनों को गणेश उत्सवों और दुर्गा उत्सवों से खड़े किए गए धार्मिक उन्माद ने विफल किया। ''गणपति उत्सव के दौरान अक्सर सांप्रदायिक हिंसा होती है। पिछले वर्ष सात सितम्बर को महाराष्ट्र के थाणे और उस्मानाबाद में हिंसा हुई। थाणे में गणपति के जुलूस में चल रहे लोगों और मुसलमानों की भीड़ के बीच पत्थर बाजी हुई। पुलिस ने तत्परतापूर्वक कार्यवाही

कर हालात को नियंत्रित कर लिया। उस्मानाबाद में स्थिति अधिक गम्भीर बनी। वहाँ गणपति के जुलूस में शामिल कुछ लोगों ने मुसलमानों पर गुलाल फेंकना शुरू कर दिया। मस्जिद और मुसलमानों की दुकानों पर पथराव हुआ। कुछ दुकानों में आग लगा दी गयी और कुछ दुकानों को लूट लिया गया।''[7] फिर संविधान के प्रावधानों के अनुसार लागू आरक्षण व्यवस्था को विफल करने के लिए राम-मंदिर का उन्माद खड़ा किया गया। भारत की लंबी गुलामी का कारण भी कहीं ना कहीं धर्म ही रहा है। आज भी भूमंडलीकरण के रूप में विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गुलामी को आमंत्रित करने वालों में धर्म ध्वजधारी लोग ही सबसे आगे हैं। धर्म समाज के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण है क्योंकि धर्म का संबंध इहलोक से ना होकर परलोक से माना जाता है। धर्म की आड़ में लोक परलोक को सुधारने की बात करते हैं। लेकिन धर्म के ठेकेदारों को यह समझना चाहिए कि परलोक के सुधारने से इहलोक कभी नहीं सुधरता। हाँ, इहलोक के सुधरने से परलोक अवश्य सुधर जाता है। धर्म इस जगत को मिथ्या मानता है इसलिए इहलोक से उसका कोई वास्ता नहीं है और इसी कारण राज्य से उसका द्वंद रहता है। लेकिन राज्य का संबंध तो इस लोक से है। उसका परलोक से कोई संबंध नहीं है। राज्य और धर्म दोनों विपरीत दिशा में चलते हैं इसलिए राज्य में धर्म का कोई दखल नहीं होना चाहिए तथा राज्य को धार्मिक कामों से कोई संबंध नहीं रखना चाहिए। स्वतंत्रता, समता और बंधुता ये सिर्फ हमारे संविधान के आधारभूत मूल्य नहीं हैं, ये आज सारे सभ्य मानव-समाज के आदर्श हैं। भले ही ये मूल्य फ्रांसीसी क्रांति के समय लोकप्रिय हुए, ये समूचे मानव-समाज में चले विचार-मंथन की निचोड़ हैं। दुःख और सुख के मूल स्त्रोत की खोज में लगे दुनिया के महान विचारकों ने भी पाया कि स्वतंत्रता, समता और बंधुता के मूल्य जीवन को समृद्ध और सार्थक बनाते हैं तथा इनके विपरीत गुलामी, गैरबराबरी और द्वेष जीवन को क्षीण कर देता है। मार्क्स के वर्गहीन समाज की कल्पना भी स्वतंत्रता, समता और बंधुता की उपलब्धि का

आश्वासन देती है। भारतीय समाज ने जिस मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य आदि को जीवन का अंतिम लक्ष्य माना उनका सार भी स्वतत्रंता, समता और बंधुता की स्थिति ही है।

स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद सांप्रदायिकता की क्या स्थिति थी और है? इसको समझते हुए ही हम सांप्रदायिकता के स्वरूप को समझ सकते हैं। सांप्रदायिकता के स्वरूप को समझने के लिए हमें मध्यकाल के इतिहास, 1947 का विभाजन, राममंदिर का निर्माण,गोधरा कांड, सिक्ख दंगों को विस्तार से समझना होगा कि कैसे धर्म के नाम पर लोगों को भड़काया जाता है और राष्ट्र के निर्माण की मूलभूत आवश्यकताएं रोटी, कपड़ा, मकान, बिजली, सड़क, शिक्षा, रोजगार से लोगों का ध्यान भटकाकर धर्म की राजनीति की जाती है। पिछले सत्तर वर्षों में हमारे देश में प्रजातंत्र की जड़ें तो जम गयी हैं परंतु राजनेता दिन-ब-दिन शक्तिशाली होते चले जा रहे हैं और जनता की आवाज सुनने वाला कोई नहीं है। मंदिर बनवाना, हिंदुओं की तरफ उठने वाले हाथों को काट देना किस तरह किसी धर्मनिरपेक्ष राजनैतिक पार्टी के एजेंडे में शामिल हो सकता है। हिंदुओं की तरह उठने वाले हाथों को काट देंगे इस तरह के भाषण देने वाले राजनेता से जानने का मन करता है कि वह उन हिंदुओं के हाथों को कैसे राकेंगे या उनके शब्दों में काटेंगे जो हिंदुओं पर ही उठ रहे हैं। शिव सेना महाराष्ट्र में मराठी भाषी हिंदुओं के अलावा अन्य भाषा के हिंदुओं के साथ कैसा व्यवहार करती है यह किसी से छुपा नहीं है। धर्मनिरपेक्ष-प्रजातंत्र के अस्तित्व में बने रहने के लिए यह जरूरी है कि वहां पर कानून और न्याय व्यवस्था का पालन हो। राष्ट्रीय स्तर की पार्टियों और अन्य पार्टियों के भी इस तरह के आपत्तिजनक भाषणों को चुनाव आयोग को नज़रअंदाज नहीं करना चाहिए। यह काबिले तारीफ है कि टी. एन. शेषन ने चुनाव आचार संहिता का कड़ाई से पालन करवाना शुरू किया था। भारत में भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, जातिवाद और राजनीति के अपराधीकरण को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। नजरअंदाज करने का ही नतीजा होता है कि सांप्रदायिक ताकतें चुनाव जीतने के लिए घृणा फैलाने वाले वक्तव्यों का जमकर इस्तेमाल

करती हैं। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि एक युवक जिसके ज़ेहन में आदर्शवाद होना चाहिए उसके दिल में नफरत के अलावा कुछ नहीं होता। यह धर्मनिरपेक्ष-प्रजातांत्रिक व्यवस्था की बड़ी कमजोरी है। सांप्रदायिक अफवाहों को फैलाने वालों को यह समझना चाहिए कि धर्मनिरपेक्षता इस देश की सबसे बड़ी ताकत है जिसे सुप्रीम कोर्ट ने गोलकनाथ मामले में धर्मनिरपेक्षता को संविधान के मूल ढांचे का भाग बनाया जिसे संविधान संशोधन के जरिए भी नहीं बदला जा सकता।

हमें यह समझना होगा कि क्या भारतीय समाज में धर्म के नाम पर हमेशा दंगे होते थे? धर्म के नाम पर जो दंगे शुरू हुए वो अंग्रेजों के आने के बाद हुए। अंग्रेजों के आने से पूर्व यहां हिंदू और मुसलमान दोनों राजाओं का राज था। आज समाज में जो दंगे होते हैं उन्हें इतिहास से जोड़ा जाता है। यह आवश्यक हो जाता है कि हमें इतिहास का स्वच्छ ज्ञान हो। वो ज्ञान नहीं जो हमारे राजनेता हमें देते हैं। सांप्रदायिकता के नाम पर होने वाले दंगों का चरित्र क्या होता है ये समझना चाहिए। 2013 में पाकिस्तान में लाहौर में एक ईसाई बस्ती को जलाया गया जिसमें कई ईसाई मारे गये। तीन महीने बाद उत्तरप्रदेश में मुसलमानों के गांव को जलाया गया उसके तीन महीने बाद बांग्लादेश में दंगे हुए यहां हिंदू मारे गये। पाकिस्तान में ईसाई मारे गये, भारत में मुसलमान मारे गये और बांग्लादेश में हिंदू मारे गये। यह विदित है कि पाकिस्तान में ईसाई और हिंदू खराब माने जाते हैं। बांग्लादेश में हिंदू और बौद्ध; भारत में मुसलमान और ईसाई। ये बुरा माना जाना इसके लिए समाज में नफरत पैदा की जाती है। इस नफरत के कारण ही दंगों में बेगुनाह लोग मारे जाते हैं। यह समझना होगा कि लोगों में नफरत होती नहीं है, पैदा की जाती है। कोई धर्म बुरा नहीं है क्योंकि सभी धर्म नैतिकता के मूल्य सिखाते हैं। हिंदू धर्म 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की शिक्षा देता है, ईसाई धर्म कहता है अपने पड़ोसी से भी उतना प्यार करो जितना अपने परिवार से करते हो वहीं इस्लाम शिक्षा देता है जिस व्यक्ति का पड़ोसी भूखे पेट रहता है उसके लिए जन्नत के दरवाजे कभी नहीं खुलेंगे। जो धर्म प्रेम, सौहार्द, अमन की बात करे वह

कैसे बुरा हो सकता है। बुरी होती है धर्म के नाम पर होने वाली राजनीति। नफरत पैदा करने के लिए इतिहास का सहारा लिया जाता है और कुछ आज की चीजों का। इतिहास का सहारा लेकर मुसलमानों को खराब बताया जाता है। हमारे राजनेता अपने भाषणों में अक्सर औरंगजेब को बुरा बताते हैं और कहते हैं कि उसने हमारे मंदिर तोड़े। औरंगजेब ने हमारे मंदिर तोड़े पर इसी औरंगजेब ने मंदिर तोड़े तो मस्जिद को भी तोड़ा और मंदिरों तथा मस्जिदों को दान भी दिया। अगर इतिहास को पूरी तरह समझेंगे तभी निष्कर्ष पर पहुंच पायेंगे। आधा-अधूरा ज्ञान हमेशा खतरनाक ही होता है। पूरी घटना लेंगे तो निष्कर्ष निकाल पायेंगे एक बात को लिया जाये तो निष्कर्ष सही नहीं होगा। औरंगजेब ने काशी में विश्वनाथ के मंदिर को तोड़ा यह गलत है लेकिन इसी औरंगजेब ने उज्जैन में महाकाल के मंदिर को दान दिया, असम के कामाख्या मंदिर को दान दिया और उत्तरप्रदेश में भगवान श्रीकृष्ण के मंदिर में दान दिया। मंदिर तोड़ने की बात को क्यों दोहराया जाता है। दान दिया इस बात को क्यों नहीं बताया जाता। औरंगजेब ने एक बार एक मस्जिद को भी तुड़वाया। मस्जिद को तुड़वाने से औरंगजेब मुसलमान-विरोधी नहीं हुआ तो हिंदू-विरोधी कैसे हो गया। मंदिर या मस्जिद क्यों तुड़वाया इस घटना को समझना होगा। राजाओं का राज्य कर से चलता था। यह समझना होगा कि ज्यादातर राजा शोषण की व्यवस्था पर खड़े थे। गोलकुण्डा के नवाब ने लगान नहीं दिया और इसका जिम्मेदार प्रजा को बताया। जासूसी करने पर पता चला नवाब ने सारी सम्पति मजिस्द के नीचे दबा रखी थी। जिसके कारण मस्जिद तोड़नी पड़ी। नेहरू जी लिखते हैं, ''औरंगजेब के जमाने में मुगल साम्राज्य साफ तौर पर कमज़ोर पड़ रहा था, उस वक्त अंग्रेजों ने लड़कर अपना कब्जा बढ़ाने की एक संगठित कोशिश की। यह 1685 की घटना है। औरंगजेब अगरचे कमजोर हो रहा था और दुश्मनों से घिरा था, अंग्रेजों को हटाने में कामयाब हुआ। इस वक्त से पहले ही फ्रांसीसी भी हिन्दुस्तान में पैर जमाने की जगह पा चुके थे। ठीक उस वक्त, जबकि हिंदुस्तान की राजनैतिक और आर्थिक हालत बिगड़ रही थी।''[8]

हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी राजाओं ने धर्मस्थलों को तुड़वाया और बनवाया। मंदिरों को तुड़वाने के कारण क्या थे? कहा जाता है गजनवी ने सोमनाथ मंदिर को तोड़ा, सोचना चाहिए गजनवी जो गजना से आ रहा था अगर उसे मंदिर ही तोड़ना होता तो रास्ते में इतने मंदिर आये होंगे। उन्हें क्यों नहीं तोड़ा। सोमनाथ का मंदिर इसलिए तोड़ा क्योंकि उसमें 51 करोड़ की सम्पत्ति थी। राजाओं ने सम्पत्ति के लिए उनको तोड़ा और आज हम उसे धर्म के चश्मे से देखते हैं। राजाओं के लिए वो सोना, चांदी थे हमारे लिये मूर्तियां। हिन्दू राजा, मुसलमान राजा ने मंदिर, मस्जिद तोड़े इनका हम पर गलत तरीके से प्रभाव डाला जाता है। यहां आता है मुसलमान राजाओं ने मंदिर तोड़े वही पाकिस्तान में आता है कि हिंदू राजाओं ने मस्जिद तोड़ी। यह गलत है जहां इतिहास को धर्म की नजर से देखा जाता है। इतिहास का निर्माण श्रमजीवी लोगों ने किया। राजा तो इनका शोषण करता था। सभी नहीं पर एक पैटर्न था क्योंकि राजाओं की नींव शोषण पर ही खड़ी थी चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान। आज इनको राजाओं के धर्म से क्यों जोड़ा गया। धर्म के नाम की राजनीति की शुरूआत अंग्रेजों के आने के बाद से हुई। 1857 की क्रांति की चिंगारी लगाई मंगल पांडे ने, नेतृत्व किया बाहदुरशाह जफर ने, उनका साथ दिया तात्यां टोपे, नाना साहब, झांसी की रानी ने। हिंदू, मुसलमान मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़े। इससे अंग्रेजों की सत्ता हिल गई तो अंग्रेजों ने फैसला किया अगर यहां राज करना है तो नीति लगानी होगी 'फूट डालो राज करो' और धर्म से अच्छा फूट डालने का कोई रास्ता नहीं है। तो राजा का धर्म और इन सब चीजों को जोड़ दिया। वैसे इतिहास में देखा जाये तो हिंदुस्तान में हिंदू, मुसलमान राजा आपस में हमेशा लड़ते नहीं रहे। राजा आपस में लड़ते भी थे, दोस्ती भी करते थे। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि एक मुसलमान राजा है तो उसके दरबार में सब मुस्लिम अधिकारी थे। अकबर के महल में एक कृष्ण का मंदिर था। महाराणा प्रताप जिसमें यह देखने की कोशिश की जाती है हिंदुओं के लिए लड़े दरअसल वो हिंदुओं के लिए नहीं सत्ता के लिए लड़े। अकबर महाराणा प्रताप की लड़ाई हल्दीघाटी में हुई। अकबर की

फौज में अकबर नहीं आये थे उनके सेनापति राजा मान सिंह और उनके सहायक सहजादे सलीम ने उनका नेतृत्व किया। हाकिम खान सूर ने महाराणा प्रताप का नेतृत्व किया। ये धर्म की लड़ाई है या सत्ता की लड़ाई हिंदू मुसलमान की लड़ाई है या राजाओं की लड़ाई। हमारे मस्तिष्क में गलत प्रकार से डाली गई है कि हिंदू महाराणा प्रताप और मुसलमान अकबर की लड़ाई। पहले कन्स्टिटूयन्सी तो थी नहीं कि सीमा निर्धारित हो। पहले तो तलवार के सहारे पर सीमा बनती थी। राजा का काम कर और लूटमार से ही चलता था। 'शिवाजी' जिन्हें गो-प्रतिपादक ब्राह्मण और मुसलमानों का विरोधी बताया जाता है ये दोनों ही बाते गलत तरीके से सामने रखी जाती हैं। शिवाजी की एक घटना लेते हैं। एक बार उनकी सेना सूरत में लूटपाट करने गई। उन्होंने सेना को संदेश दिया कि सूरत में जो फादर अम्ब्रोस पिंटो का आश्रम है उसको कोई हानि नहीं पहुंचानी है दूसरा किसी भी धर्म को मानने वाले का ग्रंथ सामने आ जाये तो उसका अपमान नहीं करना। इस लूटमार को आज के नेता कैसे बताते हैं शिवाजी महाराज इतने महान थे कि औरंगजेब का खजाना लूटने के लिए उन्होंने सूरत पर लूटमार की। शिवाजी ने सूरत को इसलिए नहीं चुना था कि वो औरंगजेब का इलाका था। व्यापार का केंद्र और धनी शहर होने के कारण चुना था। उसी शहर में उन्होंने आश्रम को नहीं लूटा और आज उस घटना को अपने वोट बैंक के लिए हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, सिख से जोड़कर राजनेताओं द्वारा बताया जाता है। ''ऐसे विचार स्वार्थी धर्मशिक्षकों, शास्त्रियों और मुल्लाओं ने हमें दिये हैं और इसमें जो कमी रही गयी थी, उसे अंग्रेजों ने पूरा किया। उन्हें इतिहास लिखने की आदत है; हर एक जाति के रीति-रिवाज जानने का दम्भ करते हैं। वे अपने बाजे खुद बजाते हैं और हमारे मन में अपनी बात सही होने का विश्वास जमाते हैं। हम भोलेपन में उस सब पर भरोसा कर लेते हैं।''[9] हैरानी की बात यह है कि इन नेताओं को पता होना चाहिए कि औरंगजेब का खजाना सूरत में नहीं दिल्ली में था। यह कहा जाता है कि मुसलमानों ने हिंदू स्त्रियों के साथ बदसलूकी की। ये सिर्फ मुसलमानों के साथ नहीं है। ये हर राजा चाहे राजा हिंदू हो या मुसलमान औरतों को

बदसलूकी का सामना करना पड़ता था। वो तो आज भी करना पड़ता है। तभी तो कहा जाता है कि पुरुष युद्ध में हारे या जीते स्त्री की तो हार ही होती है। अकबर के दरबार में नवरत्न थे। इन नवरत्नों में से तीन हिंदू थे बीरबल, राजा टोडरमल और तानसेन। टोडरमल अकबर के राज्य में वित्तमंत्री थे। तो ये हिंदू, मुसलमान का मामला नहीं था। सत्ता का, राजा का, वफादारी का मामला था। राजा वफादारी के आधार पर अधिकारी रखते थे ना कि धर्म के आधार पर। धर्म के आधार पर बहुत कम अधिकारी नियुक्त होते थे। इस्लाम बहुत क्रूर धर्म है ऐसा कहकर लोगों को भ्रमित किया जाता है। गाँधी जी कहते हैं, "हिंदू अहिंसक और मुसलमान हिंसक हैं, यह बात अगर सही हो तो अहिंसक का धर्म क्या है? अहिंसक को आदमी की हिंसा करनी चाहिए। ऐसा कहीं लिखा नहीं है। अहिंसक के लिए तो राह सीधी है । उसे एक को बचाने के लिए दूसरे की हिंसा करनी ही नहीं चाहिए । उसे तो मात्र चरण वंदना करनी चाहिए, सिर्फ समझाने का काम करना चाहिए । इसी में उसका पुरुषार्थ है। लेकिन क्या तमाम हिंदू अहिंसक हैं? सवाल की जड़ में जाकर विचार करने पर मालूम होता है कि कोई भी अहिंसक नहीं है।"[10] सवाल आता है कि भारत में इस्लाम कैसे फैला? जवाब मिलता है कि मुसलमान राजा आये घोड़े पर बैठकर एक हाथ में तलवार थी, एक हाथ में कुरआन थी। उन्होंने लोगों को डराया कि कुरआन को स्वीकार करो नहीं तो खत्म कर देगें। इस्लाम तलवार की नोक पर नहीं फैला है। धर्म को राजाओं द्वारा कतई नहीं फैलाया गया। एक अपवाद को छोड़ कर सम्राट अशोक। सम्राट अशोक एक मात्र अपवाद है जिसने बौद्ध धर्म का प्रसार किया। उसने भी तलवार के आधार पर नहीं प्यार के आधार पर किया। नेहरु जी लिखते हैं, "कलिंग के साम्राज्य में मिलाये जाने के ठीक बाद ही प्रियदर्शी सम्राट का अहिंसा धर्म का पालन करना, उस धर्म से प्रेम और उसका प्रचार शुरु होता है।"[11] भारत में सबसे पहली मस्जिद केरल राज्य में बनी। जबकि उस काल में केरल में किसी मुसलमान राजा का राज्य नहीं था। केरल में मालाबार के तट पर अरब व्यापारी आते थे खजूर लाते थे और भारत से आम, केले, मसाले लेकर जाते थे। राजा को

टैक्स मिलता था। ये व्यापारी आते थे इसलिए वहां के हिंदू राजा ने मस्जिद बनवाई। स्वामी विवेकानंद बताते हैं कि ये कहना बिल्कुल गलत है कि इस्लाम तलवार की नोक पर फैला। यहां के शूद्रों ने, अछूतों ने वर्ण व्यवस्था के अत्याचार से बचने के लिए इस्लाम अपनाया। साधारण तौर पर देखा जाये तो प्रत्येक धर्म में लोग पूजा पाठ, दर्शन के लिए किसी ना किसी धार्मिक स्थल पर जाते हैं। हिंदुओं में शूद्रों को मन्दिर में जाना निषेध था। अपनी शांति के लिए ये लोग सूफी संतों की दरगाह पर जाते थे। सूफी संतों के प्रभाव से इस्लाम फैला। नेहरू अपनी पुस्तक हिंदुस्तान की कहानी में बताते हैं, ''इस्लाम हिंदुस्तान में राजनैतिक ताकत की हैसियत से आने से सदियों पहले मजहब की हैसियत से आ चुका था।''[12] भारत की सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, कला, धार्मिक परम्पराओं का विकास मेल-जोल से हुआ है। यह बात भी है कि दुनिया में जो भी विकास होता है मेल-जोल से होता है नफरत से नहीं। नफरत, हिंसा, वैमनस्य से कभी भी दुनिया का विकास नहीं होता है। सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, कला, धर्म का एक जबरदस्त मेल-जोल इस भजन 'मन तरपत है हरि दर्शन को आज' के माध्यम से देखते हैं। इसको लिखा 'शकील बदायुनी' ने, गाया 'मोहम्मद रफी' ने और संगीत दिया नौशाद ने। भक्तिकाल के तुकाराम और कबीर को मानने वाले केवल हिंदू ही नहीं हैं। तुकाराम की वारकरी परम्परा को मुसलमान भी उतना ही मानते हैं जितना हिंदू, मुसलमानों का एक बड़ा तबका वारकरी परम्परा से जुड़ता है। संत कबीर को मानने वाले दोनों समुदाय हैं। कबीर ने धर्म की नैतिकता पर बल दिया। कोई पूजा-पाठ करता है, धर्मस्थलों पर जाता है, धार्मिक-ग्रंथों को पूजता है तो उन्हें लगता है कि वे धार्मिक हैं पर संत कबीर बताते हैं कि धर्म क्या है। कबीर कहते हैं –

पोथि पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का पढ़े, सो पंडित होय।।

धर्म मानवता से प्रेम सिखाने का ही नाम है। प्रेम की यही परिभाषा भक्तिकाल में संतो ने सिखाई और यही बात सूफी संतों ने। अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत की पृष्ठभूमि कुछ इसी प्रकार की थी। आपस में धर्म के नाम पर ऐसा कोई भेद नहीं था जो आज के दौर में देखने को मिलता है। राजाओं की लड़ाई धर्म को लेकर नहीं सत्ता को लेकर थी। 1857 की क्रांति के बाद सांप्रदायिकता की राजनीति, धर्म की राजनीति की शुरूआत अंग्रेजों ने की। अंग्रेज भारत आये तो व्यापार करने थे पर यहाँ शासन किया। यहां की सम्पत्ति को लूटकर इंग्लैण्ड ले गये। अंग्रेजों के आने से पहले भारत के कुछ क्षेत्रों में मुसलमान राजाओं का शासन था। दो प्रकार के मुसलमान राजा थे एक जो आये और लूटपाट करके चले गये दूसरे जिन्होंने भारत पर राज किया। जिन्होंने यहाँ राज किया वो यहाँ की सम्पत्ति लूट कर बाहर नहीं लेकर गये। यहीं रहे और यहीं शासन किया। जबकि अंग्रेजों ने राज तो यहां किया पर शासन इंग्लैंड से चलाया। पहले राष्ट्र नहीं, राजशाही था। राजाओं की सीमा निर्धारित नहीं थी। हम राष्ट्र बने आजादी के आंदोलन के साथ। अंग्रेजों को यहां की सम्पत्ति लूट कर इंग्लैंड ले जानी थी। इसलिए कुछ परिवर्तन अपने स्वार्थ के लिए करे। रेलगाड़ी, पोस्टल सिस्टम, आधुनिक शासन। नेहरू जी लिखते हैं, ''हिन्दुस्तान में रेलों के आने से औद्योगिक युग का सकारात्मक पहलू सामने आया; अब तक ब्रिटेन के तैयार माल की शक्ल में उसका नकारात्मक पहलू ही सामने आया था।''[13] इन तीनों परिवर्तनों के साथ तीन वर्ग अस्तित्व में आये।

1. मजदूर वर्ग

2. व्यापारी, उद्योगपति वर्ग

3. आधुनिक शिक्षित वर्ग

ये उभरते वर्ग थे। ये लोग नये वर्ग को देख रहे थे। भविष्य से जुड़े थे। कुछ वर्ग पुरानी सत्ता से जुड़े थे। नवाब, राजा, जागीरदार ये सब पुरानी सभ्यता से जुड़े थे जो शोषण करते थे

और उसका आधार बताते थे कि उनको ऊपर वाले ने अधिकार दिया है कि वो यहां शासन करे। जिसे 'डिवाइन रूल' कहते थे। नया वर्ग आगे की बात खुद के आधार पर देखता है। यह मूलभूत फर्क है नये वर्ग का पुराने वर्ग से। जहां भी औद्योगिक क्रांति हुई वहां नये वर्ग ने पुराने वर्ग को समाप्त कर दिया। फ्रांस की औद्योगिक क्रांति में यही देखने को मिला। पुरानी विचारधारा राजशाही की थी। नई विचारधारा नौकरशाही की है। आज धर्म की आड़ में पुराने मूल्यों को आधुनिक रूप में रखने की कोशिश की जा रही है। उभरते लोगों में कुछ संगठन बने वहीं दूसरी तरफ कुछ अन्य संगठन बने। उभरते लोगों से जो संगठन बने उन संगठनों के नाम से ही उनका पैटर्न समझ आता है। भगत सिंह ने संगठन बनाया-नौजवान भारत सभा, डॉ. भीमराव अम्बेडकर-रिपब्लिक पार्टी ऑफ इंडिया, मौलाना अब्बुल कलाम आजाद, एनी बेसेन्ट, सरदार वल्लभ भाई पटेल, बलदेव सिंह, मोहनदास कर्मचंद गांधी आदि ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम से संगठन बनाया। इन नये वर्गों ने आजादी के आंदोलन का नेतृत्व किया। स्पष्ट है स्वतंत्रता के आंदोलन को सभी धर्म के लोगों ने मिल कर लड़ा। इससे पुराने मूल्य वाले राजाओं, जमींदार, जागीरदारों को आहत हुआ। नई विचारधारा और पुरानी विचारधारा साथ-साथ चलती रही। शुरूआत में हिंदू, मुसलमान, राजा, नवाब, साथ-साथ थे इनके दो प्रतिनिधि थे ढाका का नवाब दूसरा काशी के राजा और उन्होंने एक संगठन बनाया यूनाइटेड इंडिया पेट्रियोटिक ऐसोशिएशन। इस संगठन में अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति चली और यूनाइटेड इंडिया पेट्रियोटिक ऐशोशिएशन के दो हिस्से हो गये। शुरू में केवल राजा, नवाब, जागीरदार बाद में कुछ शिक्षित और उच्च वर्ग लोग इन से जुड़ गये। बाद में शिक्षित मुसलमान, उच्च वर्ग मुसलमान और यहां के ब्राह्मण लोग और उच्च वर्ग के लोग जुड़े। इन्होंने तीन संगठन बनाये। मोहम्मद अली जिन्ना ने मुस्लिम लीग दूसरा वीर सावरकर ने 1915 में हिंदू महासभा की स्थापना की। हिंदू महासभा से हिन्दुत्व शब्द लाया गया और हिन्दुत्व राष्ट्र की कल्पना की गई। इसी हिन्दुत्व राष्ट्र के आधार पर एक और संगठन बना।

1925 में आर.एस.एस. बना जो भारतीय राष्ट्रवाद को नहीं मानता हिन्दुत्व राष्ट्रवाद को लेकर चलता है। अगर पहले वाले तीन संगठनों और इन तीन संगठनों में फर्क देखा जाए तो इनके नाम से ही इनका पैटर्न समझ आ जाता है। उधर भारत का नाम है इधर धर्म का नाम है। हाँ, यह जगजाहिर है कि गांधी, भगतसिंह और अम्बेडकर के विषय में भेद थे पर इनके विचारों में समानता भी थी। तीनों भारतीय राष्ट्रवाद, समता, स्वतंत्रता, बंधुता, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र को मानते थे। इनका केन्द्रीय मूल्य था स्वतंत्रता, समता, समानता। ये भारतीय राष्ट्रवाद की स्थापना करना चाहते थे ना कि एकलधर्म के राष्ट्र की। राष्ट्र शिक्षा, संघर्ष, आंदोलन, औद्योगिकरण, लोकतंत्र से बनता है। पुराने मूल्यों (सामंती व्यवस्था) से नये मूल्यों की ओर जाना राष्ट्र का निर्माण है। जानने की कोशिश करते हैं कि इन संगठनों में क्या फर्क था। राष्ट्र की कल्पना साढ़े तीन हज़ार साल पुरानी है। इससे पहले राष्ट्र की कल्पना नहीं थी। पहले राजाशाही थी और राजाशाही से भी पहले पशुपालन समाज था। मुस्लिम लीग ने कहा हम (हिंदुस्तान) मुस्लिम राष्ट्र हैं। आठवीं शताब्दी में मोहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया तब से मुस्लिम राष्ट्र है। हम यह बात भलीभांति जानते हैं कि आधुनिक राष्ट्र के निर्माण का आधार स्वतंत्रता, बंधुता और समता थी। मुस्लिम लीग अपनी पहचान राजशाही से ले रही थी। राजशाही की पहचान का सिद्धांत ऊँच-नीच का है। हिंदू महासभा भी इन्ही पदचिन्हों पर थी। मनुष्य पहले शिकारी था। शिकारी के बाद पशुपालक अवस्था आई जो आर्यों का साहित्य है वह पशुपालक अवस्था है। उसके बाद कृषि समाज उसी के साथ जैन धर्म, बौद्ध धर्म आते हैं जो अहिंसा की बात करते हैं। कृषि समाज के बाद आता है औद्योगिक समाज। औद्योगिक समाज से पहले के मूल्य ऊँच नीच के मूल्य हैं। यह कहना गलत है कि अनादिकाल में सब अच्छा था। मनुष्य, समाज के आपसी संबंध हमेशा बदलते रहे हैं। राजशाही में बराबरी के सिद्धांत नहीं थे। सामंती लोग चाहें वे पहले के हों या आज के नेता, अनादिकाल की बात क्यों करते हैं क्योंकि ये समाज में धर्म, जाति वर्ग के नाम पर ऊँच नीच बनाये रखना चाहते हैं। ये हिंदू

मुसलमान का झगड़ा नहीं है। इनकी राजनीति कैसे बढ़े। एक तरफ हिंदू सांप्रदायिकता और दूसरी तरफ मुस्लिम सांप्रदायिकता। गांधी, भगतसिंह, अम्बेडकर ने इतिहास को राजा के धर्म के आधार पर नहीं देखा इसलिए ये अपनी समझ पैदा कर पाये। आज के नेता आधे-अधूरे ज्ञान के साथ इतिहास को गाते हैं। गांधी जी ने जहां लोगों को जोड़ा, वहीं भगत सिंह ने लोक सिद्धांत दिये जो किसान, मजदूर वर्ग की भलाई के सिद्धांत थे। अम्बेडकर ने लोकतंत्र के मूल्य, समता के मूल्य, सामाजिक न्याय की बात को महत्त्वपूर्ण तरीके से रखा। गांधी, अम्बेडकर के मत अलग-अलग थे वो एक अलग शोध का विषय है।

मुस्लिम लीग जिसने हिन्दुओं के खिलाफ नफरत फैलाई। हिन्दू महासभा ने मुसलमानों के खिलाफ नफरत फैलाई। नफरत के कारण हिंसा जन्मती है। नफरत को फैलाया जाता है। नफरत के माध्यम से दंगे करवाये जाते हैं। येल यूनिवर्सिटी की स्टडी के अनुसार जहाँ भी सांप्रदायिक दंगे करवाये जाते हैं वहां धर्म के नाम वाली पार्टी पहले से ज्यादा मजबूत हो जाती है, " BJP gains in polls after every riots says Yale study."[14] राम मंदिर के मुद्दे से यह बात स्पष्ट हो जाती है राम मंदिर का मुद्दा आया उससे पहले 1984 में एक पार्टी के पास दो सीटें आई फिर अस्सी सीटें हो गई। दंगे बढ़ते गये सीट बढ़ती गई।

भारत में ईसाई समाज पहली शताब्दी में आया। 1952 में सेंट थॉमस ने चर्च की स्थापना की। तब से ईसाई लोग चल रहे हैं। आज भारत में ईसाइयों की संख्या 2-3% है। ईसाई धर्म लगभग साठ साल पुराना है। अक्सर कहा जाता है कि ईसाइयों ने लालच, प्रलोभन देकर अपने धर्म का प्रसार किया। समझ नहीं आता क्या साठ साल में मात्र 2-3% को ही लालच दे पाये। भारत में सदियों से मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख धर्म के लोग आते रहे हैं। हमारी सभ्यता मिली जुली थी। गांधी जी ने इसे देखा और कहा कि यहां सभी धर्मों के लोग एवं सभी जातियों के लोग रहते हैं। सावरकर जी ने इनके विपरीत जाकर कहा जिनका धर्म यहां का है वो हिन्दू हैं बाकी विदेशी। अब जरा सोचिये बुद्ध, जैन, सिख मानेगा कि वो यहां का है। जो लोग

इस देश की पुण्यभूमि को मातृभूमि मानते हैं वो हिन्दू हैं बाकी विदेशी हैं। " Savarkar chose the term 'Hindutva' to desire the 'quality of being a hindu' in ethnic, cultural and political terms. He argued that a hindu is one who considers India to be his motherland (matrbhumi), the land of his ancestors (pitrbhumi) & his holy land (punyabhumi)"[15] धर्म में कोई देश-विदेश नहीं होता। बौद्ध धर्म का उदय भारत-नेपाल की सीमा के पास हुआ लेकिन सबसे ज्यादा बौद्ध धर्म को मानने वाले थाईलैण्ड, चीन, जापान, श्रीलंका में है। धर्म की कोई सीमा नहीं होती। धर्म को देश के आधार पर नहीं बांटा जा सकता। हिन्दू धर्म केवल भारत में नहीं है हर जगह है। देश में लोग एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते रहे हैं। इसी से संस्कृति बदलती है। यह बात भी ध्यान रखने की है एक बंगाली मुसलमान पंजाबी मुसलमान के मुकाबले बंगाली हिंदू से ज्यादा मिलता-जुलता है; यही बात दूसरे लोगों के साथ है। अगर हिन्दुस्तान में या और कहीं बहुत से बंगाली मुसलमान और हिन्दू एक साथ मिलें, तो फौरन ही एक जगह इकट्ठे हो जायेंगे और बड़ा अपनापन सा महसूस करेंगे। पंजाबी भी, चाहे वे हिंदू हो या मुसलमान या सिख, यही करेंगे।

सावरकर ने मुसलमान और क्रिश्चयन को विदेशी घोषित कर दिया। हिन्दुत्व के आधार पर हिन्दू राष्ट्र बनायेंगे। हिन्दू शब्द का अर्थ जिनको हम हिन्दू धर्मग्रंथ कहते हैं, उन धर्मग्रंथों में हिंदू शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है वहां आर्य शब्द और अन्य शब्दों का प्रयोग है। लेकिन हिन्दू शब्द का नहीं। हिन्दू शब्द आठवीं शताब्दी में अस्तित्व में आया। हिन्दू शब्द के दो अर्थ लगाये जाते हैं। पहला अपमानजनक शब्द है जिसको ईरान, ईराक के लोगों ने यहां के लोगों के लिए लगाया। दूसरा अर्थ है यहाँ के पश्चिम (सऊदी अरब, अफगानिस्तान आदि) से जो लोग आये उन्हें सिन्धु पार करना पड़ता था उनकी भाषा में 'स' के बदले 'ह' का ज्यादा इस्तेमाल होता तो शब्द आया हिन्दू। हिन्दू शब्द का पहला प्रयोग इस ज़मीन के लिए था।

उन्होंने कहा सिन्धु नदी के पूर्व में जो क्षेत्र है वो हिन्दू है। यहां जो धर्म वेदों में है अम्बेडकर जी ने उसे ब्राह्मणवादी कहा। ब्राह्मणवाद के अंतर्गत जाति, वर्ण, स्त्री, पुरुष के ऊँच नीच की बात है। अम्बेडकर जी ने कहा मैं हिन्दू धर्म (ब्राह्मणवाद) में जन्मा यह मेरे बस में नहीं था। मैं इसी धर्म में मरूँ यह मेरे हाथ में है। उन्होंने समतावादी धर्म बौद्ध धर्म स्वीकार किया। मनु स्मृति में शूद्र, महिलाओं की गुलामी के कानून दिये हैं, यह अम्बेडकर को मंजूर नहीं थे। महाड़ सत्याग्रह, कालाराम मंदिर सत्याग्रह के साथ-साथ उन्होंने मनु स्मृति को जलाया और इन्हीं अम्बेडकर ने बाद में भारतीय संविधान बनाया। संविधान ने हमें स्वतंत्रता, समता, बंधुता दी। वहीं आर.एस.एस. के मुखिया के. सुदर्शन ने कहा, "भारतीय संविधान विदेशी मूल्यों पर बना है और एक ऐसा संविधान लाओ जो भारतीय धर्म ग्रंथों के आधार पर बना हो।"[16]

1880 के दशक में हिन्दू जमींदार ऊपर उठ रहे थे। उनकी राजनीति के लिए हिन्दुत्व शब्द का प्रयोग किया और ये हिन्दुत्व शब्द राजनीति के रूप में आया जिसको सावरकर ने सामने रखा और आर.एस.एस. ने आधार बनाया। हिन्दुत्व धर्म नहीं है। हिन्दू धर्म की आड़ में ब्राह्मणवादी मूल्यों के लिए, ऊँच-नीच के मूल्यों के लिए जो राजनीति की जाती है उसे कहते हैं हिन्दुत्व। अगर देखा जाये तो गांधी और गोडसे दोनों हिन्दू थे पर गांधी हिन्दू हैं और गोडसे हिन्दुत्व। गांधी यानी धर्म और गोडसे माने राजनीति। यह फर्क है हिन्दू और हिन्दुत्व में। जब पूरे भारत ने आजादी के आंदोलन में भारतीय राष्ट्र की कल्पना रखी तो उस समय सावरकर ने बाद में आर.एस.एस. ने हिन्दू राष्ट्र की कल्पना पहले रखी। 1925 में इसी हिन्दुत्व विचारधारा को लेकर नागपुर में आर.एस.एस. बना। इसे अंग्रेजों के खिलाफ लड़ना नहीं था। 1925 में बराबरी के आंदोलनों की नींव पड़ रही थी। ज्योतिबा फुले ने दलितों के लिए स्कूल खोले। उन्होंने लोगों को समझाया धर्मग्रंथों के पीछे मत भागिये। शिक्षा अर्जित कीजिए क्योंकि मुक्ति का आधार शिक्षा ही है। इसी आधार पर आगे चलकर सावित्री फुले ने फातिमा शेख के साथ मिलकर लड़कियों के लिए स्कूल खोले। लोग इन पर कीचड़ फेंकते कि ये धर्म के खिलाफ

काम कर रहे हैं। लड़कियों की शिक्षा रोकने के लिए अफवाह फैलाई गई। ऐसी अफवाहों से दंगे होते हैं। अफवाहों के कारण ही बाबरी मजिस्द में रामलला जन्म लेते हैं, गणपति की मूर्ति दूध पीती है आदि। समाजिक समता की बात 1920 में बढ़-चढ़ कर उठने लगी। बाद में अम्बेडकर जी ने शक्ति दी। दलितों में उत्साह आया। 1920 में असहयोग आंदोलन शुरू हुआ। अभी तक अंग्रेजों के खिलाफ जो आंदोलन चल रहे थे वो पढ़े लिखे लोग अपने कार्यालयों से पत्र लिख कर चला रहे थे। गांधी जी के समझ में आया ऐसे आजादी नहीं मिलेगी। आजादी के लिए आम जनता को जोड़ना होगा। 1920 से ही मुस्लिम लीग ज्यादा शक्तिशाली हुई। 1920 के प्रभाव से आम लोग, दलित, औरतें सभी आजादी के आंदोलन से जुड़े। दलित, स्त्रियों के आगे आने से समाज के संभ्रांत लोगों को लगा कि ये तो हमारे धर्म पर संकट है। मुस्लिम लीग ने कहा इस्लाम खतरे में है, आर.एस.एस. ने कहा हिन्दू धर्म खतरे में है। समझना होगा कि धर्म खतरे में था या सत्ता खतरे में थी। अपनी सत्ता को धर्म के नाम पर प्रस्तुत कर रहे थे। आर.एस.एस. बनने की पृष्ठभूमि तीन बातों पर आधारित है

- आम लोगों का आज़ादी से जुड़ना
- दलितों का समाज के क्षेत्र में सामने आना
- हिटलर से प्रेरणा।

इस बात को समझा जा सकता है कि सांप्रदायिकता जब अपने चरम पर पहुंच जाती है तो वह फासीवाद का रूप ले लेती है। जहां लोकतंत्र के मूल्यों का कोई आधार नहीं रह जाता। उस समय देश में जो भी आंदोलन हो रहे थे वो आजादी के लिए हो रहे थे। राष्ट्र का निर्माण लोकतंत्र के आधार पर बनता है। आम जनता का आंदोलनों से जुड़ना संभ्रांत लोगों का रास नहीं आ रहा था। वहीं गोलवलकर हिटलर की तारीफ करते हुए कहते हैं, "नरसंहार अच्छा होता है इसी से राष्ट्र का निर्माण होता है।"[17] "गोलवलकर अपनी पुस्तक 'बंच ऑफ़ थॉट्स' में

हिन्दू समाज के अंदर के तीन खतरे 1.मुसलमान 2.ईसाई 3.कम्यूनिस्ट को बताते हैं।" आर.एस.एस. के अनुसार मुख्य समस्या मुसलमान, ईसाई, मंदिरों को तोड़ा गया ये मुख्य समस्यायें हैं। जबकि एक राष्ट्र की मुख्य समस्या रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, बिजली, शिक्षा, सड़क, रोजगार आदि है। एक बात तो स्पष्ट है कि जो भी कार्य लोकतंत्र के लिए किया जाए वही कार्य धार्मिक पार्टियों के लिए खतरा बन जाता है। अपनी व्यवस्था को बड़ी चालाकी से फैला रखा है। जब मौका मिले धर्म के साथ-साथ वर्ण व्यवस्था को छुपे रूप में या खुले रूप में सामने लाते हैं। पांडुरंग शास्त्री आठवले मानते हैं कि किसी व्यक्ति को अपने पिता का काम ही करना चाहिए। बड़े छुपे रूप में वर्णव्यवस्था को जारी रखने का संकेत दे दिया। आर.एस.एस स्त्रियों के दमन की बात करते हैं लेकिन अगर इनके स्वयं के संगठनों के नाम को ध्यान से देखा जाए तो स्त्री-पुरूष असमानता स्पष्ट झलक जाती है। आर.एस.एस. - राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (पुरुषों के लिए) राष्ट्र सेविका समिति (स्त्रियों के लिए)। इन दोनों को देखने पर साफ एक अंतर दिखता है। वह अंतर है 'स्वयं' का जो पुरूषों के लिए है। स्वयं का अर्थ होता है 'मेरा अस्तित्व'। इस अंतर को हम भली भांति समझ सकते है। बड़ी चालाकी के साथ पुराने मूल्यों को नये मूल्यों में दिखाकर जनता को भ्रमित किया जाता है। इस प्रकार धार्मिक पार्टियां अपने स्वार्थ के लिए अधूरी जानकारी से जनता को भ्रमित करती हैं।

धर्मनिरपेक्षता मूलतः एक राजनैतिक सिद्धांत है। सभी राजनैतिक दलों को धर्मनिरपेक्षता को अपने राजनैतिक दर्शन के भाग के रूप में मान्यता देनी होती है। किसी भी ऐसी पार्टी को धर्मनिरपेक्ष कैसे कहा जा सकता है जो दिन-रात हिन्दुत्व की दुहाई देती हो।

2.2 भारतीय परिदृश्य एवं सांप्रदायिकता :

भारत में सांप्रदायिकता की शुरूआत अंग्रेजों के आने से हुई जिसका वीभत्स रूप भारत के विभाजन के रूप में दिखा। विभाजन किन आधारों और परिस्थितियों में हुआ इसको

जानना और समझना इसलिए आवश्यक है क्योंकि जो काम अंग्रेजों ने किया था 'फूट डालो राज करो' वही काम आज समाज के नेता, संभ्रात लोग अपने स्वार्थ के लिए कर रहे हैं। अब एक नई पीढ़ी उभर कर आ रही है तो यह हम पर है कि हम उस इतिहास को समझें, परखें और स्वार्थ की इस राजनीति को पहचानें जिनके आधार पर ये दंगे होते हैं। जिससे सही दिशा मिले और धर्म की राजनीति करने वाले लोगों को समझ आये कि जनता बेवकूफ नहीं है। विभाजन, राम मंदिर, 1984 का सिख दंगा, 2002 के गुजरात दंगे, 1992 के मुम्बई दंगे आदि लोकतंत्र पर कलंक है। भारत के विभाजन की नींव 1905 में बंगाल के विभाजन से ही पड़ गई थी। 1905 में वायसराय लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन यह कहकर कर दिया कि क्षेत्र काफी बड़ा है हमसे संभल नहीं रहा, जबकि मुख्य कारण एकता को तोड़ना था। बंगाल हमेशा से अंग्रेजों के लिए महत्त्वपूर्ण रहा था। इन्होंने भारत में कारखाने डालने की शुरूआत यहीं से की थी। 1905 के बाद चीजें बदल गई। एक बार फूट डल गई फिर इसको कोई संभाल नहीं पाया। एकता को जोड़ने के लिए संभालने की कोशिश बहुत की गई। एकता को जोड़ने के लिए 1905 में स्वदेशी आंदोलन शुरू किया गया लेकिन समस्या यह हुई कि 1907 में सूरत अधिवेशन में कांग्रेस दो भागों (नरमदल, गरमदल) में बंट गई। नरमदल तो ठीक था लेकिन गरमदल पर अंग्रेजों ने जबरदस्त तरीके से हमला किया। इस स्वदेशी आंदोलन में मुस्लिम भी हिस्सा ले रहे थे। लेकिन अंग्रेजों ने इस आंदोलन को अपनी ताकत से दबा दिया। उस तरीके से आगे नहीं बढ़ पाया जिस तरीके से गांधी जी के समय में बढ़ा। गांधी ने स्वदेशी आंदोलन का जबरदस्त तरीके से प्रयोग किया था। अपने अहिंसात्मक तरीकों से अंग्रेजों को झुका दिया। जो गांधी कर पाये वो उस समय के नेता करने में विफल रहे। बंगाल के विभाजन के साथ ही 1906 में मुस्लिम लीग बन गई। वैसे तो मुस्लिम लीग की स्थापना 1886 में सर सैयद अहमद खाँ ने कर दी थी कुछ कारणों से इस पर बैन लग गया था। बंगाल के विभाजन से ही मुस्लिमों के दिमाग में यह बात आने लगी कि हिन्दू बहुल प्रदेशों के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस है

मुसलमानों का क्या होगा? अंग्रेज अपनी नीति 'फूट डालो राज करो' में सफल हो चुके थे। मुसलमानों को शंका ने घेर लिया था। इस शंका के चलते मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और भी कारण रहे थे। मुस्लिम लीग की स्थापना का उद्देश्य मुसलमानों को आगे लाया जाये, उनको शिक्षा मुहैया करवाई जाये, मुस्लिम को मुख्यधारा में लाया जाये, उनका स्तर बढ़ाया जाये को लेकर हुई थी। लेकिन धीरे-धीरे राजनैतिक बदलाव में परिवर्तित होने लगी और 1947 में भारत के विभाजन में सबसे बड़ा हाथ मुस्लिम लीग का था। जब जिन्ना सत्ता में आये तो चीजें बदलने लगी। शुरूआत में तो निर्धारित किया कि एकता होनी चाहिए लेकिन बाद में विचार बदल गये। उनको सिर्फ़ पाकिस्तान चाहिए था और उन्होंने कहा इससे कम कुछ मंजूर नहीं है, ''यह अलग बात है कि जिन्ना तक को अपनी मृत्यु के पहले यह समझ में आ गया था कि विभाजन भारत की समस्याओं का सबसे बेहतर हल नहीं था और वे विभाजन पर पुनर्विचार चाहते थे''[18] भारत के बहुत सारे नेताओं ने विभाजन को रोकने की कोशिश की लेकिन विफल हो गए थे। महात्मा गांधी ने तो भूख हड़ताल तक की और कहा मेरी लाश पर बंटवारा होगा, पर स्थिति सुधरी नहीं। सरदार वल्लभ भाई पटेल पहले ही समझ चुके थे कि उन परिस्थितियों में बंटवारा ही बेहतर है। 1947 में यह हुआ लेकिन इसकी फूट 1905 में ही पड़ चुकी थी। वहां से स्थितियां बदलीं। ऐसा नहीं है कि परिस्थिति को सुधारने की कोशिश नहीं की गई। Two nation theory की जिन्ना ने वकालत की। मुस्लिम इनको काफी मानते थे लेकिन विभाजन की बात पर मुस्लिम इनसे सहमत नहीं थे। 1916 में लखनऊ समझौता के माध्यम से हिन्दू और मुसलमानों को साथ लाने की कोशिश की गई लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के कारण यह कोशिश पूरी तरह से सफल नहीं हो पाई। प्रथम विश्व युद्ध में इंग्लैंड बहुत बड़ी शक्ति था। इंग्लैंड ने भारतीयों से मदद इस शर्त पर मांगी कि तुम हमारा साथ दो हम तुम्हें आजादी दे देंगे। इसमें गांधी जी सबसे पहले अंग्रेजों की बातों में आ गये और भारतीयों से अंग्रेजों का साथ देने की अपील करने लगे। भारत को पूरी स्वायत्ता चाहिए थी। इसके लिए मुस्लिम का साथ चाहिए

था। 1916 में लखनऊ समझौता किया गया। जिसमें मुस्लिमों के लिए सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया। इसके अंतर्गत मुस्लिम सदस्यों का चुनाव मुस्लिम मतदाता ही कर सकते थे। इस प्रकार (1909 के अधिनियम) ने सांप्रदायिकता को वैधानिकता प्रदान की और लार्ड मिंटो को सांप्रदायिक निर्वाचक के जनक के रूप में जाना गया। 1919 में जब प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हुआ तब अंग्रेजों ने आज़ादी देने से साफ इंकार कर दिया। इसी बीच 1919 में जलियांवाला बाग भी हो जाता है। आजादी के नाम पर अंग्रेज सरकार ने दो कानून उठा कर दे दिये : भारत शासन अधिनियम 1919, रौलट एक्ट

1919 के भारतीय शासन अधिनियम अथवा मोंटफ़ोर्ड सुधारों को भारतीयों ने बिलकुल अपर्याप्त समझा था और सरकार से मांग की थी कि वह भारत में यथाशीघ्र पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना करे। लेकिन इस मांग के बावजूद भारतीय नेताओं ने 1919 के सुधारों को कार्यान्वित करने का निश्चय किया। इस प्रकार जब भारतवासी समझौते की भावना में थे, तभी एक समिति की रिपोर्ट पर जिसके अध्यक्ष जस्टिस रौलेट थे, केंद्रीय विधानमंडल ने जनता के तीव्र विरोध के बावजूद दो विधेयक पास कर दिए जिनमें राष्ट्रीय आंदोलन को कुचल डालने के उपायों का निर्देश था। महात्मा गांधी ने इन दमनकारी कानूनों को 'काला कानून' बताया और इसके विरोध में सत्याग्रह का आहवान किया। सारे देश में हड़तालें हुई। अनेक स्थानों पर उपद्रव हो गए। पंजाब में मार्शल लॉ की घोषणा हुई और वहां बैसाखी के दिन 13 अप्रैल, 1919 को जलियांवाला कांड हुआ।

रौलट एक्ट के कारण बहुत सारे लोग जलियावाला बाग में इक्ट्ठे होते हैं। क्योंकि सैफुद्दीन किचलू और डॉ. सतपाल को इसी एक्ट के तहत जेल में डाल दिया जाता है। जनरल डायर जलियांवाला बाग में नरसंहार करवाता है। जिसका बीस साल बाद उधम सिंह ने बदला लिया। जलियांवाला बाग की जांच के लिए हंटर कमीशन बैठता है जो मात्र एक दिखावा था। भारतीय इससे सहमत नहीं होते और अहिंसात्मक रूप से असहयोग आंदोलन शुरू होता है

और विदेशी सामान का बहिष्कार किया जाता है। खादी के इस्तेमाल पर जोर दिया जाता है। गांधी जी के असहयोग आंदोलन के बाद देश भर में सांप्रदायिक दंगे होने लगे। प्रसिद्ध इतिहासकार सुमित सरकार लिखते हैं, "1920 के बाद के वर्षों में हिन्दू और मुस्लिम दोनों प्रकार के संप्रदायवाद में जैसी वृद्धि हुई वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। यह इस काल की सबसे गंभीर और नकारात्मक संवृत्ति थी।"[19] 1920 में ही खिलाफत आंदोलन चलाया गया। मुसलमानों के लिए यह अच्छा अवसर था। प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटेन की जीत हुई थी। ब्रिटेन ने तुर्की को बदल कर रख दिया था। वहां के खलीफा को उस समय जितने भी मुस्लिम थे वे गुरु मानते थे। गांधी जी ने खिलाफत आंदोलन का नेतृत्व किया हालांकि अली ब्रदर्स ने इसकी शुरूआत की थी।

असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन साथ-साथ चले। 1922 में चौरी चौरा घटना होती है। जिससे गांधी जी आंदोलन वापस ले लेते हैं। स्थितियां सही करने की कोशिश की गई थी लेकिन ऐसा हुआ नहीं। अब भारत शासन अधिनियम 1935 जो कि बहुत महत्त्वपूर्ण था। इसमें भारत अपने कानून की बहुत समय से मांग कर रहा होता है। 1909 से शुरू होता है 1927 तक चलता है। वैसे तो 1935 में खत्म हुआ था। 1927 में जब साइमन कमीशन आता है तब भी भारत मांग करता है कि इसमें भारत का कोई भी सदस्य नहीं है जबकि होना चाहिए। आयोग के सभी सदस्य ब्रिटिश थे, इसलिए सभी दलों ने इसका बहिष्कार किया। नेहरू रिपोर्ट लाई जाती है जिसमें कानून का पूरा खाका होता है। भारत शासन अधिनियम 1935 के तहत भारत को पूर्ण उत्तरदायी सरकार के गठन का अधिकार मिल गया। यह अधिनियम भारत के लिए एक मील का पत्थर साबित हुआ। इससे मताधिकार का विस्तार किया। लगभग 10% जनसंख्या को मताधिकार मिल गया। इससे मुसलमानों की परेशानी बढ़ गई। मुस्लिमों को लगा अगर ऐसा होता है कि कोई ऐसी सरकार आ जाती है तो वह हिन्दुओं की सरकार होगी। मुस्लिमों के लिए तो कुछ बचेगा नहीं। इसलिए इस एक्ट का बहिष्कार करो।

दूसरी बात 1937 में जो चुनाव हुए उसमें कांग्रेस आई और मुस्लिम लीग को जबरदस्त झटका पहुंचा। कुछ जगहों पर मुस्लिम लीग को ठीक-ठाक वोट मिली थी। लेकिन सम्पूर्ण प्रदर्शन सही नहीं रहा। इससे जिन्ना साहब की बेचैनी बढ़ जाती है। इसी के चक्कर में लाहौर रेजोल्यूशन (1940) पास होता है। इसमें मांग होती है कि उन क्षेत्रों को अलग कर दो जहां पर मुस्लिम हैं। मुस्लिम और हिन्दुओं को अलग कर दो और पाकिस्तान बना दो। इस रेजोल्यूशन को पाकिस्तान रेजोल्यूशन भी कहा जाता है। पाकिस्तान की बहुत ज्यादा मांगे उठ रही होती हैं। इसी बीच 1939 में द्वितीय विश्व की शुरूआत हो जाती है। हिटलर इसकी शुरूआत करता है। अंग्रेजों की हालत खराब हो जाती है। अब यहां पर भारतीयों के लिए अच्छा मौका होता है कि वह अंग्रेजों पर वार करे लेकिन मुस्लिम लीग साथ नहीं देती। वार करने के लिए यह जरूरी था कि पूरा भारत एक हो। इसी बीच क्रिप्स प्रस्ताव (1942) आता है जिसमें अंग्रेज यह शर्त रखते हैं कि हम तुमको आजादी तो दे देंगे लेकिन डोमिनेंस स्टेट्स होगा। डोमिनेंस स्टेट्स का अर्थ होता है आजाद तो रहोगे लेकिन सत्ता हमारे हाथ में होगी। भारत सीधी-सीधी दो शर्ते रखता है : तत्काल स्वतंत्रता, संपूर्ण ताकत।

द्वितीय विश्व युद्ध में भारत का साथ बहुत महत्त्वपूर्ण था क्योंकि भारत बहुत बड़ा देश था और इंग्लैंड बहुत बड़ी शक्ति। हर कोई भारत का साथ चाहता था। भारत के नेता डोमिनेंस स्टेट्स वाली बात नहीं मानते और क्रिप्स मिशन विफल हो जाता है। लेकिन मुस्लिम लीग सहमत नहीं होती उनको तो हर हाल में पाकिस्तान चाहिए। कैबिनेट मिशन योजना में भी पाकिस्तान की ही माँग करते हैं 1942 के बाद कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' आंदोलन शुरू किया। गांधी जी ने क्रिप्स मिशन को 'post dated cheque' की संज्ञा दी। भारत छोड़ो रेजोल्यूशन पास होता है। 1942 में जो आंदोलन शुरू हुआ इसे बहुत ही शांतिपूर्वक चलाया गया। एक तरह यह भी संभावना बढ़ रही थी कि कहीं जापान भारत पर हमला ना कर दे। उस समय जापान, जर्मनी, इटली ये 'एक्सिस पावर' थे। ये तीनो अंग्रेजो के खिलाफ थे। भारतीयों को

लगा ये सही मौका है अंग्रेजों को यहां से हटाने का। इन सबमें मुस्लिम लीग बिल्कुल भी इनके साथ नहीं थी। भारतीय नेताओं की योजना विफल हो गई और अंग्रेजों ने जबरदस्त तरीके से इनका दमन किया और तीन-तीन साल के लिए जेलों में डाल दिया। इस सब में मुस्लिम लीग को मौका मिल गया और जिन्ना ने तो द्वितीय विश्वयुद्ध को 'Blessing in disguise' कहा। बड़े जबरदस्त तरीके से चीजों को सम्भाला गया और पाकिस्तान बनाने का जो प्रोपेगैंडा था उसे फैलाने में कामयाब रहे। यहाँ से चीजे बिगड़नी शुरू हो गई। पाकिस्तान की माँग से कोई खुश नहीं था चाहे मुसलमान हों या हिन्दू, क्योंकि इसके परिणाम क्या होंगे सबको पता था।

कैबिनेट मिशन योजना (1946) को वैसे तो ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेंट ऐट्ली लेकर आते हैं जो कि हमेशा से भारत का साथ देते आये होते हैं। विश्व युद्ध के दौरान नेविल चेम्बर्लन प्रधानमंत्री होते हैं लेकिन हिटलर चाल खेल जाता है और नेविल चेम्बर्लन हिटलर से डर जाते हैं। जिसके कारण वो म्युनिख समझौता करते हैं और हिटलर से बोलते हैं कि जर्मनी का कुछ भाग तुम रख लो लेकिन युद्ध मत छेड़ना। हिटलर मानता नहीं है और युद्ध छेड़ देता है। उसके बाद नेविल चेम्बर्लन को हटाकर विन्स्टॉन चर्चिल प्रधानमंत्री बनते हैं। ये विन्स्टॉन चर्चिल वही है जो 1943 में बंगाल के अकाल का जिम्मेवार होता है। इसी वजह से द्वितीय विश्व युद्ध जीतने के बाद भी चर्चिल प्रधानमंत्री नहीं बनते और क्लेमेंट ऐट्ली प्रधानमंत्री बनकर आते हैं। सत्ता पलट जाती है। ऐट्ली जो हमेशा से स्वतंत्रता के पक्ष में रहते थे अब इनको एक मौका मिल जाता है। 1945 के बाद अंग्रेजों का दिवालिया निकल जाता है और इन्हें काफी नुकसान होता है जिससे ब्रिटेन अब 'सुपर पावर' नहीं रहता। अब इन्हें लगने लगता है कि भारत को पावर देकर यहाँ से निकल जाये। इन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता चाहे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सत्ता में आये या मुस्लिम लीग। इसके लिए वे कैबिनेट मिशन योजना लेकर आते हैं। क्रिप्स मिशन पूरा का पूरा असफल हो गया होता है। इस कैबिनेट योजन के अध्यक्ष लॉर्ड पेथिक लॉरेन्स एवं सर स्टैफर्ड क्रिप्स (वही जो क्रिप्स मिशन ले कर आते हैं) होते हैं। इस कैबिनेट योजना के जो

प्रावधान होते हैं वो कुछ सही होते हैं और कुछ गलत होते हैं। मुस्लिम लीग कुछ से सहमत होती है और कुछ से असहमत। लेकिन कांग्रेस पूरी तरह से बिखर जाती है। इसके बाद चुनाव होता है और चुनावों में कांग्रेस जीतकर आती है। इससे मुस्लिम लीग काफी त्रस्त भी होती है कि बार-बार ये क्या हो रहा है। कैबिनेट मिशन में जो प्रावधान रखे गये उनको समझना आवश्यक है।

1. भारत संघीय सरकार बनायेगी।

2. रक्षा, संचार, फॉरेन अफेयर्स पूरा का पूरा भारत के पास रहेगा।

3. भारत का तीन हिस्सों में विभाजन।

एक क्षेत्र मुस्लिम बहुलता का होगा। मुस्लिम क्षेत्र में पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमांत, सिंध, ब्लूचिस्तान; दूसरा असाम और बंगाल; तीसरा बाकी जो भी बचा है या प्रांत है उसको हिस्सों में बाँट दो। उसके बाद जो भी कन्स्टिचूयंट असेम्बली चुन कर आयेगी वही भारत का संविधान बनायेगी। उसके बाद जो ये तीन भागों में बाँटा गया है इन तीनों का खुद का संघ होगा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात इनका अपना खुद का संविधान होगा। शक्ति राज्य के पास ज्यादा रहेगी, केन्द्र के पास कम। इस प्रस्ताव से मुस्लिम लीग बड़ी खुश थी। वह चाहती थी कि राज्य को ज्यादा शक्ति दी जाये। उसके पास ज्यादा पावर रहेगी तो बाद में जब वो हटेंगे (ये भी प्रस्ताव था कि पाँच साल बाद आप हट सकते हैं) तो पाकिस्तान के साथ आ जायेंगे। कांग्रेस इससे बिल्कुल भी सहमत नहीं थी। पाकिस्तान नहीं बनेगा इससे कांग्रेस तो खुश थी लेकिन मुस्लिम लीग बिल्कुल भी खुश नहीं थी। कांग्रेस प्रांत के समूहीकरण के खिलाफ थी। नेहरू जी ने तो इसे सिरे से खारिज कर दिया था। एक प्रांत पूरा पाकिस्तान का बाकी जो प्रांत है वो हिन्दू बहुलता के होंगे। कांग्रेस नहीं मानती। इसके बाद माउंटबेटन योजना आती है और चीजों को सही करता है। फिर चुनाव होते हैं और कांग्रेस सत्ता में आती है। इससे खफा होकर कि

पाकिस्तान अपना नहीं होगा (क्योंकि कांग्रेस साफ मना कर देती है कि बंटवारा नहीं होगा) जिन्ना प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस ले आते हैं। जिन्ना आदेश देते हैं कि यह शांतिपूर्वक होना चाहिए लेकिन वह भी यह भलीभांति जानते थे कि शांतिपूर्वक होना संभव नहीं है। इस दिवस के आने से स्थिति बिगड़ जाती है और नरसंहार होता है। हिंदू-मुसलमान एक दूसरे पर हमला कर देते हैं। जिससे दोनों तरफ से बहुत ज्यादा जाने जाती हैं। इसमें सबसे ज्यादा आम जनता पिसती है। असामाजिक तत्व इसका भरपूर फायदा उठाते हैं। सबसे बड़ी बात है कि जितने भी अधिकारी उस समय होते हैं वो चुप रहते हैं और कलकता शहर को जलने देते हैं। ये हिंसा कलकता से बंगाल से बिहार के क्षेत्रों में फैल जाती है। इससे गांधी जी सबसे ज्यादा दुःखी होते हैं। विभाजन, दंगों के दुष्परिणाम यहीं से दिखने लगते हैं कि यह एक ऐसी बुराई है जो मनुष्य में फूट डालती है और समाज के टुकड़े हो जाते हैं। ये दंगे समाज की मूल प्रवृति और परंपरा के विरुद्ध होते हैं। गाँधी जी विभाजन के पक्ष में कभी नहीं रहे क्योंकि वह इसके परिणाम भलीभांति जानते थे और देख चुके थे। वो जिन्ना को भी उतना ही मानते थे जितना नेहरू को। इस घटना के बाद वो प्रार्थना सभाओं का जगह-जगह आयोजन करते हैं। जिससे हिन्दू-मुस्लिम को जोड़ा जा सके लेकिन विफल रहते हैं। इसी बीच माउण्टबेटन योजना आती है जो चीजों को थोड़ा संभालती है। माउण्टबेटन कमाल के जनरल होते हैं। फरवरी 1947 में ऐटली बोलते हैं कि जून 1948 में भारत को आजाद कर देंगे। लेकिन 1947 में इसमें जबरदस्त तरीके से फेरबदल कर दिया जाता है। इसी बीच सिरिल रैडक्लिफ को बुलाया जाता है। होता क्या है कि आखिरी समय तक यह नहीं पता होता है कि कौन सा राज्य भारत का होगा और कौन सा पाकिस्तान का जिसकी वजह से सारी समस्या खड़ी होती है। अगर अंग्रेज पहले ही बांट देते तो इतनी हिंसा नहीं होती और बहुत सारी जानें बच सकती थी। सबसे बड़ी दिक्कत विलबंता की वजह से आई क्योंकि कोई नहीं जानता था कि कौन सा राज्य कहां जायेगा। अंग्रेजों ने बड़ी चालाकी से हिन्दू-मुसलमान-सिक्ख-ईसाई में फूट डलवा दी। किसी को नहीं पता था लाहौर

किधर जायेगा। उस समय लाहौर पंजाब की राजधानी था। लाहौर, रावलपिंडी यहाँ गांव थे और लोग पीढ़ी दर पीढ़ी यहाँ पर रह रहे थे। सोचिए कितना मुश्किल रहा होगा। ये जानें बचाई जा सकती थी लेकिन ब्रिटिश अधिकारियों ने सीधी लापरवाही दिखाई। एक दम से उन्होंने बोल दिया कि अगस्त 1947 में भारत को आज़ाद कर देंगे। दो-तीन महीने में इतने कम समय में कैसे इंतजाम होता। लेकिन भारतीय नेताओं ने किया और जितने हिन्दू क्षेत्र थे वो भारत को दिये गये और मुस्लिम बहुल क्षेत्र पाकिस्तान को। बीच में एक रेखा खींची गई जिसे रेडक्लिफ रेखा कहते हैं। यह रेखा सीमा निर्धारित करने के लिए बनी, लेकिन अंत तक सीमा निर्धारित नहीं हो पाई। जिससे सांप्रदायिक दंगे और भडक गये। ये अलग बात है कि बल्लभ भाई पटेल ने अपनी गजब की राजनयिक बुद्धि और नेतृत्व के माध्यम से राज्यों को जोड़ा। 1945 के बाद संयुक्त राष्ट्र का गठन हुआ जिस से युद्ध ना हो। भारत पहले से इसका सदस्य था। 1947 में पाकिस्तान भी इसका सदस्य बना। यह नेहरू जी की सबसे बड़ी गलती रही कि वो कश्मीर का मुद्दा संयुक्त राष्ट्र में लेकर गये क्योंकि उन्हें लग रहा था समस्या का समाधान हो जायेगा। लेकिन ये तो आज तक अटका हुआ है। विभाजन की वजह से जो हिंसा हुई उसने लोगों की रूह कँपा दी। बहुत जानें गईं। बड़े पैमाने पर विस्थापना हुई। आम जनता ना कोई हिन्दू ना मुसलमान इससे खुश थे। इस हिंसात्मक माहौल में ऐसे भी लोग थे जिन्होंने एक दूसरे कौम के लोगों को पनाह एवं सुरक्षा दी। इंजीनियर असगर अली लिखते हैं, ‘‘एक हिन्दू परिवार जिसके पड़ोस में दो मुस्लिम परिवार रहते थे। एक हिंसक भीड़ ने घर को घेर लिया और माँग की कि मुस्लिम परिवारों को उसे सौंप दिया जाये ताकि वे उन्हें मार कर इनके घर बार लूट सकें। उसने कहा कि जो भी आगे बढ़ेगा वो उसकी गर्दन हसिए से उड़ा देंगे और फिर वे लोग उनकी लाश के ऊपर से गुजर कर मुसलमानों का कत्ल कर सकते हैं। भीड़ से कोई आगे नहीं बढ़ा।’’[20] दोनों तरफ ऐसी घटनायें हुईं और लोगों ने इतने वीभत्स माहौल में सौहार्द के उदाहरण प्रस्तुत किये। इस विभाजन में सबसे ज्यादा समस्या सिखों को हुई क्योंकि पूरा का पूरा पंजाब दो भागों में

विभाजित हो गया था। इतना बड़े पैमाने पर पलायन हुआ जिसके कारण बड़े-बड़े शरणार्थी शिविर लगाये गये। शरणार्थी शिविर के संदर्भ में एक घटना का उल्लेख किया जा सकता है एक बार नेहरू जी इन शरणार्थी शिविरों का दौरा करने गये। उस समय तक लोग इतना परेशान हो गये थे कि नेहरू जी को जान से मार देना चाहते थे। इसमें उनकी गलती नहीं थी क्या करते हालात ही ऐसे थे। सारी गलती अंग्रेजों की थी जिसका भुगतान यहां की जनता को करना पड़ा। जाहिर सी बात है अनेक जातियों, अनेक वादों और विचारों तथा अनेक संस्कृतियों से जिस देश का निर्माण हुआ हो वहां पर ऐसी घटना से आघात तो होना ही था। वस्तुतः जब हम ऐतिहासिक तथ्यों को संप्रदायवादी दृष्टिकोण से देखते है तभी हम यह बात कहते हैं कि सांप्रदायिकता का अस्तित्व मध्यकाल से है। मध्यकाल में होने वाले युद्ध सत्ता को लेकर थे ना कि धर्म को लेकर। सांप्रदायिकता के बीज अंग्रेजों के आने से पड़े और इसका प्रसार विभाजन के रूप में दिखता है। जितनी यह बात सच है उतना ही इस सच्चाई से भी मुंह नहीं फेरा जा सकता कि अंग्रेजों ने ऐसा क्या देखा जिससे उन्हें लगा कि धर्म के नाम पर भारत में आसानी से राज किया जा सकता है और फूट डलवाई जा सकती है ये प्रश्न उठता है? गांधी जी लिखते हैं, ‘‘धर्म के नाम पर कुछ ऐसे विचार स्वार्थी धर्मशिक्षकों, शास्त्रियों और मुल्लाओं ने हमें दिये और इसमें जो कमी रह गयी थी, उसे अंग्रेजों ने पूरा कर दिया। उन्हें इतिहास लिखने की आदत है; हर एक जाति के रीति-रिवाज जानने का दम्भ करते हैं । वे अपने बाजे खुद बजाते है और हमारे मन में अपनी बात सही होने का विश्वास जमाते हैं । हम भोलेपन में उस सब पर भरोसा कर लेते हैं।’’[21]

ये तो बात थी हिन्दू-मस्लिम सांप्रदायिकता की, लेकिन आजादी के कुछ वर्षों बाद से हिन्दू-सिख सांप्रदायिकता भी मुँह खोलने लगी। जिसकी चरम परिणति इंदिरा गांधी की हत्या में हुई। हिन्दू-सिख सांप्रदायिकता के पीछे के कारणों पर विचार करने पर हम पाते हैं कि इसके पीछे भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद की चाल तथा अकाली आन्दोलन द्वारा सत्ता प्राप्ति हेतु अपनी

उग्र मांगों को सरकार के सामने रखना और भाषा व आर्थिक मसलों को तूल देकर सांप्रदायिक रंग देना। इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हिन्दू-सिख सांप्रदायिकता जिस रूप में सामने आई उसे देखकर समाज का प्रत्येक बुद्धिजीवी विचलति हो उठा। शमशेर बहादुर सिंह अपनी कविता धार्मिक दंगों की राजनीति में लिखते हैं

"जो हिन्दू-मुस्लिम था

वो सिख-हिन्दू हो गया

ये नफरत का तकाजा

और कितना बढ़ गया देखो"[22]

साहित्यकारों ने इस विषय को लेकर इस पर रचनायें की वही गुलजार साहब ने 'माचिस' जैसी फिल्म बनाई। 30 अक्टूबर, 1984 को इंदिरा गांधी के सिख अंगरक्षकों ने उनकी हत्या कर दी। इस घटना के बाद शाम तक सारे देश में हिन्दू-सिख सांप्रदायिक दंगे फैल गये। खास तौर पर दिल्ली में। हालांकि आम हिन्दू या आम सिख सांप्रदायिक नहीं था पर सांप्रदायिक नेताओं और असामाजिक तत्वों के कारण दंगे भड़के और जानें गईं। 1984 में खाली सिखों का ही कत्ले आम नहीं हुआ था वो कत्लेआम उस सोच का हुआ था जिससे लोकतंत्र बनता है, बनता है संविधान, बनता है देश। उन दंगों का इंसाफ आज तक नहीं हो पाया है। इन दंगों की राख पर राजनीति की गर्म रोटियां सभी राजनीतिक पार्टियों ने सेकी। इन सत्तर सालों में भजपा ने भी राज किया और कांग्रेस ने भी परंतु दोषियों को सजा कोई भी पार्टी नहीं दिलवा पाई। तो यह सारा मुल्क क्यों न माने कि सत्ता की भाषा एक होती है, उसके संस्कार एक होते है। क्या कांग्रेस क्या बीजेपी। राजनेताओं, पूंजीपतियों, वकीलों के जमुलेबाजियों के कसीदों पर पार्टियां बन सकती हैं, सरकार भी बन सकती है लेकिन लोकतंत्र नहीं बनता। नैतिकता की मौत के साथ-साथ लोकतंत्र भी मरता है। क्या फर्क पड़ता है कि सिखों ने हिन्दुओं को मारा या हिन्दुओं ने सिखों को मारा। यह सच है पर मारा सबने है। दोषियों

को सजा देने का इंतजार यह देश कर लेगा वैसे भी इस देश में इंसाफ लोकतंत्र के हिस्से में आये इंतजार का दूसरा नाम नहीं होता तो अमन की लाश पर गणतंत्र के गिद्दों का महाभोज कैसे होता। 31 अक्टूबर, 1984 के दंगे साफ करते हैं कि इंसान सिर्फ इंसान नहीं होता वह हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, सिख, ईसाई, पारसी, जैन या यहूदी होता है। उस समय राजीव गांधी ने हिंदू होना चुना था। कांग्रेस ने सिखों के कत्लेआम की छूट दे दी थी। सीबीआई की रिपोर्ट बताती है दिल्ली पुलिस ने आंखे बंद कर ली थीं। एक दूसरी रिपोर्ट बताती है पुलिस की निगरानी में ही सब कुछ होने दिया गया। इंजीनियर असगर अली कहते हैं, ''सच तो यह है कि हमारे देश का पुलिस तंत्र न तो स्वतंत्र है, न ही निष्पक्ष और न ही पूर्वाग्रहों से मुक्त है। हमारा समाज जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रीयता के आधारों पर बुरी तरह से विभाजित है। हम सबके धार्मिक, जातीय, भाषायी और क्षेत्रीय पूर्वाग्रह हैं। हमारा समाज तो हमें ये पूर्वाग्रह देता ही है, हमारी शिक्षा व्यवस्था भी हमें निष्पक्ष और निरपेक्ष नहीं रहने देती। चूंकि हमारे पुलिसकर्मी भी हमारे इसी समाज से आते हैं और इसी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा पाते हैं, अतः उनसे रातों-रात एक आदर्श पुलिसकर्मी बनने की न तो अपेक्षा की जा सकती है और न ही आशा।''[23] सज्जन कुमार, ललित माकन, एच. के. अल. भगत, जगदीश टाइटलर की चौकड़ी रात-रात भर अपने काम में जुटी हुई थी। वोटर लिस्ट, राशन लिस्ट से खोज-खोज कर सिखों के घर पहचाने जा रहे थे। कितनी अजीब बात है और सोचने पर भी मजबूर करती है कि हजारों गवाहियों के बावजूद सब के सब बच गये। 1984 से 2018 तक नौ प्रधानमंत्री बने पर इंसाफ किसी से भी नहीं मिला। पिछले सत्तर वर्षों में हमारे देश में प्रजातंत्र की जड़ें तो जम गयी हैं परंतु राजनेता दिन-ब-दिन शक्तिशाली होते चले जा रहे हैं और जनता की आवाज़ सुनने वाला कोई नहीं है। दिसम्बर 1984 में दिल्ली के पुलिस अधिकारी वेद मरवाह को सिखों के कत्लेआम की जांच का जिम्मा सौंपा गया, लेकिन सरकार को पता चला कि मरवाह सच को लेके ज्यादा गंभीर है इसलिए मई 1985 में उन्हें हटाकर न्यायधीश रंगनाथ मिश्रा को लगा दिया गया। 1986 में

रिपोर्ट आई न्यायधीश रंगनाथ ने सारे अफसरों, नेताओं को क्लीनचिट दे दी। उसके बाद तीन अलग-अलग कमेटियां बनाई गई। कपूर मित्तल समीति ने बहत्तर पुलिस वालों के नाम लेकर कार्यवाही की सिफारिश की थी। तीस को तो तुरंत बर्खास्त करने की सिफारिश थी, लेकिन सिपाहियों ने सियासत को और सियासत ने सिपाहियों को बचा लिया। इस तरह 84 के दंगों का इंसाफ इंतजार की मौत मर गया। कांग्रेस को लगा चुनाव में जाने से पहले 1984 का इंसाफ करना होगा तो प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने माफ़ी की मुद्रा बनाई और संत बन गये। मनमोहन सिंह ने कहा, ''मुझे सिख समुदाय और पूरे देश से माफी मांगने में कोई हिचक नहीं है।''[24] (On behalf of our government, on behalf of the entire people of this country I bow my head in shame that such a thing took place) राहुल गांधी ने ब्यान दिया ''1984 में मासूम लोग मारे गए थे। उनका मारा जाना बहुत भयानक था ऐसा नहीं होना चाहिए था। 1984 और गुजरात दंगों में फर्क थे। गुजरात दंगों में सरकार शामिल थी। 1984 के दंगों के दौरान सरकार दंगे रोकने की कोशिश कर रही थी। मैं तब बच्चा था और मुझे याद है कि सरकार पूरी कोशिश कर रही थी। गुजरात में इसके उलट हुआ। सरकार दंगों को भड़का रही थी। इन दोनों में बहुत फर्क है।'' सच तो यह है कि सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक दंगों की जड़े राजनीति में हैं। पाकिस्तान की तर्ज पर खालिस्तान की मांग करने वाले भिंडरावालां अपने धर्म, कर्तव्य से परिचित नहीं थे। वह स्वार्थ की राजनीति करने वाले नेता था वही आज के नेता कर रहे हैं, जिसका उदाहरण ऊपर दिया गया है। यद्यपि हमारे देश में छह दशकों से संसदीय प्रजातंत्र है, तदापि हम आज भी प्रजातांत्रिक संस्कृति और मूल्यों को आत्मसात नहीं कर पाये हैं। साम्प्रदायिक राजनीति अपने आप में ही प्रजातंत्र का विनाश कर देती है। हमारे सामने पाकिस्तान का उदाहरण है। पाकिस्तान की स्थापना सांप्रदायिक राजनीति की नींव पर हुई थी और वहां आज तक राजनैतिक स्थायित्व नहीं आ सका है। पाकिस्तान तो एक तक नहीं रह सका और सन् 1971 में उसके दो टुकड़े हो गये अब वहां पर जातीय और

सांप्रदायिक हिंसा में जबरदस्त वृद्धि हुई है। वहां के नेता पाकिस्तान या पाकिस्तानियों के हितों की रक्षा करने के बजाय अमरीकी हितों के पोषक बन गये हैं।

जैसे ही यह स्पष्ट हुआ कि अंग्रेज देश में सीमित प्रजातंत्र लागू करने जा रहे हैं, तभी से सत्ता के लिए संघर्ष शुरू हो गया और दोनों समुदायों के श्रेष्ठी वर्ग ने अपने से ज्यादा हिस्सेदारी मांगना शुरू कर दी। इस तरह धार्मिक बहुवाद जो हमारी ताकत थी, वह हमारी कमजोरी बन गयी। हमारी राजनीति सिद्धांतों व मूल्यों पर आधारित होने की बजाय दोनों समुदायों के श्रेष्ठी वर्गों के निहित स्वार्थों पर आधारित हो गयी। भारत में प्रजातंत्र का विकास सामन्तवाद के शनैः शनैः बिखरते जाने से नहीं हुआ। बल्कि इसे हमारे विदेशी शासकों ने विभिन्न समुदायों के हितों का ख्याल रखते हुए लागू किया। इस प्रकार प्रजातंत्र की नींव ही गलत ढंग से पडी। वही पश्चिम में प्रजातंत्र का उद्भव एक लम्बे संघर्ष की प्रक्रिया में धीरे-धीरे हुआ; चाहे फिर वो इंग्लैड हो फ्रांस हो या कोई यूरोपीय राष्ट्र। पश्चिमी समाज में प्रजातंत्र के लिए लम्बे संघर्ष, औद्योगिकरण और बुर्जुआ तबके के उभरने के कारण, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अवधारणा मजबूत बन गयी थी। इसके विपरीत हमारे देश में व्यक्तिगत स्वतत्रंता का कोई सामाजिक आधार नहीं था। हमारे देश के लोगों के लिए अपनी जाति और धार्मिक समुदाय के बंधनों को तोड़ना आसान नहीं था और न है। भारत में आज भी लोग राजनैतिक निर्णय व्यक्तिगत तौर पर नहीं लेते। हर व्यक्ति अपनी जाति और समुदाय के सदस्य के रूप में राजनैतिक निर्णय लेता है। यह निर्णय सामूहिक होता है और संबंधित जाति या समुदाय के हितों के संदर्भ में लिया जाता है। राम जन्म भूमि का विवाद पूरे तरीके से दो समुदायों के स्वार्थ की राजनीति का परिणाम है। ये जो पूरा मुद्दा है जो राजनैतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक धार्मिक प्रश्न है आखिरकार उस स्थान पर पहले मंदिर था या नहीं, क्या उस मंदिर को तोड़ कर मस्जिद बनाई गई या फिर उसी मंदिर को संशोधित करके मस्जिद बनाई गई, यह पूरा मामला आयोध्या का विवाद है। इस मंदिर मस्जिद का झगड़ा ही अयोध्या विवाद की जड़ है। बाबरी मस्जिद पर विवाद उन्नीसवीं सदी में

ही शुरू हो गया था जब मस्जिद बनी उसके बाद मुस्लिम अंदर जा कर इबादत करते थे हिन्दू मस्जिद के बाहर ही एक जन्म भूमि है उसके चबूतरे पर पूजा अर्चना करते थे। जिसे रामचबूतरा कहते हैं ये मस्जिद के बिल्कुल बाहर था। 1853 ई. में मजिस्द के नियंत्रण को लेकर दो गुटों में दंगे हुए। जिसे देखते हुए अंग्रेजों ने एक बाड़ लगा दी। जिसमें एक तरफ मस्जिद और एक तरफ चबूतरा था। 1885 में चबूतरे के महंत थे रघुवर दास ने रामचबूतरे पर मंदिर बनाने के लिए फैजाबाद कोर्ट में अर्जी लगाई जिसे माना नहीं गया। अर्जी खारिज होने के 75 साल बाद यहां पर कुछ घटना क्रम होता है। 22/23 दिसम्बर, 1949 की रात को कुछ लोगों ने जबरदस्ती मंदिर में घुस कर कुछ मूर्तियां वहां रख दी और बात यह फैलाई गई कि रामलला की मूर्ति वहां प्रकट हुई है। इसके बाद वहां के स्थानीय प्रशासन ने मस्जिद का नियंत्रण अपने पास ले लिया। इन अफवाहों के कारण ही दंगे फैलते हैं। ये अफवाहें लोगों को भ्रमित करने के लिए फैलाई जाती हैं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए यहां जाने-माने उपन्यासकार भीष्म साहनी के 'तमस' उपन्यास से उदाहरण दिया जा सकता है। 'तमस' में मुरादअली के माध्यम से अफवाह का तंत्र कितना मजबूत होता है उसे दिखाते हैं। मुरादअली नत्थू चमार को पैसे देकर बहाने से सुअर मरवाता है और उसे मस्जिद के आगे फिंकवा देता है। ताकि दंगे भड़कें और उन दंगों की आग में वह अपने स्वार्थ की रोटियां सेक सकें।

जैसे ही ये (मूर्तियाँ प्रकट प्रकरण) हुआ कुछ समय बाद जनवरी 1950 में महंत रामचंद्र दास (नये महंत) ने कोर्ट में अपील दायर की कि अब वहां पर मूर्तियां प्रकट हो गई हैं तो मस्जिद के अन्दर हिन्दुओं को पूजा अर्चना की अनुमति दी जाये। कोर्ट ने दोनों समुदायों के लिए ही प्रवेश निषेध कर दिया। 1959 में निर्मोही अखाड़ा भी आ गया जो सालों से इस मंदिर के लिए प्रयत्न कर रहा था। 1853 में जो दंगे हुए थे उसमें इस निर्मोही अखाड़ा का हाथ था। निर्मोही अखाड़े ने कहा इस विवादित ढाँचा का नियंत्रण उन्हें दिया जाये तभी से यह शब्दावली (विवादित ढाँचा) चल पड़ी। 1961 में सुन्नी वक्फ बोर्ड ने भी केस कर दिया।

अगले 20-25 सालों तक यह मामला कोर्ट में चलता रहा। समाज, राजनीति में इसको लेकर कोई खास हलचल नहीं हुई। अचानक अस्सी के दशक में यह मांग उठ कर आने लगी कि मंदिर बनाया जाना चाहिए। इसकी शुरूआत होती है 1984 में जब विश्व हिंदू परिषद नाम के संगठन ने (ये आर.एस.एस. से जुडा संगठन है) एक धर्म संसद बुलाई वहां पर तय किया गया कि राम मंदिर का मुद्दा राजनैतिक तौर पर उठाया जाना चाहिए और राम जन्म भूमि पर राम मंदिर बनना चाहिए तो इसमें आडवाणी जैसे भाजपा के नेता भी शामिल हुए उन्होंने इस मुद्दे को जोर शोर से आगे बढ़ाया। भारतीय जन संघ जो एक पार्टी थी उससे टूट कर अलग-अलग दल बने थे। उनमें से एक 1982 में भाजपा बनी।

80 के दशक में राम जन्मभूमि एक क़ानूनी मामला था। लेकिन 1986 में हम देखते हैं कि भाजपा ने कैसे इसे एक राजनैतिक मामला बना दिया और इसके लिए सामाजिक अभियान शुरू किया गया। इसी बीच 1986 में शाहबानो केस होता है। विरोध के चलते राजीव सरकार दबाव में आ गई और सुप्रीम कोर्ट के फैसले के खिलाफ कानून बना दिया। इसे हिन्दू संगठनों ने खासतौर पर हिन्दू पार्टी भाजपा ने तुष्टीकरण की राजनीति कहा। कांग्रेस सरकार ने हिन्दुओं को खुश करने के लिए अयोध्या के मंदिर के ताले खुलवा दिये। मजेदार बात यह है कि वैसे तो सालों साल कोर्ट में केस चलते रहते हैं। इसका दूरदर्शन पर ब्रॉडकास्ट हुआ तो ये तुष्टीकरण की राजनीति थी या नहीं, यह हमें समझना है। राजनीति के कारण बहुत बडा पैंडोरा बॉक्स खोल दिया गया। जिससे मुस्लिम आंदोलन करने लगे। इसी समय कुछ दंगे भी हुए कई लोग दंगों में मारे गये। अस्सी के दशक से ही भारत में दंगों का दौर शुरू हो गया और लगातार कई सालों तक चलता रहा। कुछ भी ऐसी घटना होती थी तो अलग-अलग जगह पर दंगे होते थे। हिन्दुत्व की जो ये राजनीति है अस्सी के दशक में बहुत बढ़चढ़ कर भारत में सामने आई विहिप, संघ परिवार के अन्य सदस्यों ने इस मुद्दे को आगे बढ़ाया। अयोध्या में राम जानकी रथ यात्रा का कार्यक्रम शुरू किया गया। बजरंग दल का गठन भी इसी समय हुआ। बजरंग दल

विहिप का युवा संघ है। इसका गठन राम जानकी रथ यात्राओं को सुरक्षा देने के लिए हुआ। साथ ही साथ शिला पूजन का कार्यक्रम शुरू किया गया। पूरे देश से राम नाम लिखी ईंटें इकट्ठी की गयी। विहिप इसे बहुत बड़ी समाज सेवा बताने लगी। अस्सी के दशक में बहुत बड़ा अभियान बन गया था। अगस्त 1989 में लखनऊ बैंच ने सारे केस को इकट्ठा कर दिया। सारी याचिकाओं को एक करके कहा कि यह मुद्दा एक साथ निर्धारित होगा और स्ट्रेटस क्वअउ (status quo) को बनाये रखे। नवम्बर 1989 में विहिप ने एक शिलान्यस कार्यक्रम रखा। इस समय एक ऐसा डर भी था कि जो कारसेवक शिलान्यास करने आ रहे हैं वो मस्जिद को तोड़ ना दें। नवम्बर 1989 से ही यह डर आ गया था। शिलान्यास पूजन के लिए पहले तो कांग्रेस सरकार राजी नहीं हुई, लेकिन बाद में इसकी अनुमति दे दी जबकि यह बहुत विवादित मुद्दा था।

कंग्रेस सरकार खुद को धर्मनिरपेक्ष पार्टी कहती है। उसकी नीतियां दर्शाती हैं कि वह धर्मनिरपेक्ष है, लेकिन राजीव गांधी ने यह निर्णय इसलिए लिया क्योंकि 1990 में चुनाव आने वाले थे तो वो हिन्दुओं को नाराज नहीं करना चाहते थे। राजीव गांधी ने 1989 में अपने चुनाव का प्रचार भी अयोध्या से शुरू किया। ऐसा बहुत कम हुआ है कि जब कांग्रेस ने किसी धार्मिक स्थान से अपनी चुनाव रैली शुरू की हो। गांधी ने वहां जाकर राम राज्य की बात कही। जब राजीव गांधी ने शिलान्यास पूजन के लिए अनुमति दी, उस समय बहुत सारे कांग्रेस नेता नाराज थे। कांग्रेस यह सिद्ध करना चाहती थी कि हम हिन्दू मुस्लिम दोनों की पार्टी हैं। वी.पी.सिंह की सरकार आती है। वी.पी.सिंह के समय यह पहली बार हुआ जब वामपंथी और दक्षिणपंथी एक साथ किसी पार्टी को सपोर्ट कर रहे थे। वी.पी. सिंह की सरकार बनी जिनको दक्षिणपंथी भाजपा का साथ मिला उस समय भाजपा के पास पचासी सीट थी। इस समय रामजन्म भूमि को बढ़ चढ़ कर राजनैतिक मुद्दा बनाया। 1984 में पहले भाजपा को सिर्फ दो सीटें मिली थीं। क्या चुनाव जीतने के लिए दंगे करवाने होंगे। क्या प्रजातंत्र निर्दोषों की लाशों और भ्रष्टाचार पर

खड़ा होगा। वी.पी. सिंह की सरकार में आडवाणी ने रथ यात्रा शुरू की 25 सितम्बर, 1990 को सोमनाथ के मंदिर से यात्रा शुरू की 30 अक्टूबर, 1990 को इस यात्रा को अयोध्या पहुंचना था। अमूमन जहां से भी यह रथ यात्रा गुजरती उस जगह पर दंगे हाते 23 अक्टूबर को लालू यादव ने इस यात्रा को रोक दिया। 30 अक्टूबर को कार सेवकों ने मस्जिद गिराने की कोशिश की लेकिन मुलायम सिंह यादव ने इसका विरोध किया। असगर अली लिखते हैं, ''उत्तरप्रदेश और बिहार कई दशकों तक सांप्रदायिक हिंसा के बडे केन्द्र रहे थे। विभाजन के समय के भीषण दंगे भी उत्तर भारत में मुख्यत: इन्हीं दो राज्यों में हुए थे। यह सिलसिला स्वतंत्रता के बाद कई दशकों तक जारी रहा। परंतु मंडल कमीशन की रिपोर्ट के लागू होते ही स्थितियों में नाटकीय परिवर्तन आ गया। पिछड़ी जाति के हिन्दुओं ने मुसलमानों से हाथ मिलाकर इन दोनों राज्यों में उच्च जाति के हिन्दुओं से सत्ता छीन ली। मुसलमानों और यादवों के इस गठजोड़ के चलते दोनों राज्यों के यादव मुख्यमंत्रियों ने दंगों और साम्प्रदायिक हिंसा को सख्ती से रोका क्योंकि इससे उनके मुस्लिम मतदाता उनसे दूर जा सकते थे।''[25] काफी जद्दोजहद और स्वार्थ की राजनीति के कारण आखिरकार नरसिम्हा राव और कल्याण सिंह (राज्य) के राज में 6 दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद ढह गई। 5 दिसम्बर की रात को लखनऊ में वाजपेयी, आडवाणी ने जोशीले भाषण दिये जिससे जनता भड़की। जब कार सेवा करी जा रही थी उस समय सभी बड़े नेता अशोक सिंघल, अड़वाणी, मुरली मनोहर जोशी, उमा भारती, विहिप के नेता मौजूद थे। इक्कीसवीं सदी में भी हमारा धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र निर्दोषों की लाशों और भ्रष्टाचार के पहाड़ पर खड़ा है। प्रजातंत्र का अर्थ होता है आमजनों की सत्ता में भागीदारी। दुर्भाग्यवश, हमारे देश में राजनीति पर शक्तिशाली निहित स्वार्थों का कब्जा हो गया है। ये निहित स्वार्थी बातें तो प्रजातंत्र की करते हैं परंतु हत्याओं और नोटों की राजनीति करते हैं।

राम जन्मभूमि पर आज तक केस चल रहा है। केस इतना लम्बा चला कि अशोक सिंघल और गिरिराज किशोर की तो मृत्यु भी हो चुकी है। बाबरी मस्जिद ढहाने की वजह से 6 दिसम्बर, 1992 को पूरे देश और उपमहाद्वीप में दंगे छिड गये। मार्च 1993 में बोम्बे में जबरदस्त दंगे हुए। लगभग दो हज़ार लोग मारे गये। पाकिस्तान में कराची जैसे शहर में कई मंदिर तोड़े गये। इसका असर भारत पर ही नहीं पाकिस्तान, बांग्लादेश पर भी हुआ। बाबरी मस्जिद का विवाद इतना महत्त्वपूर्ण क्यों है देखें तो यह एक मंदिर और मस्जिद का विवाद है। इतना बड़ा मुद्दा क्यों बन गया कि इसको लेकर हजारों लोगों की जान गई। देश की राजनीति में उथल-पुथल मची। यह मुद्दा इतना हावी है देश पर कि इसने भारत की एकता, अखंडता को चुनौती दे दी। भारत के सामाजिक सौहार्द के लिए खतरा पैदा हो गया था। कानून एवं व्यवस्था की स्थिति बहुत खराब थी। बोम्बे जैसा शहर जो उच्च विचारों के लिए जाना जाता है। उसमें भी दंगों में हजारों हिन्दू-मुस्लिम मारे गये। भारत के लिए यह स्थिति विचारणीय है ताकि आगे ऐसी चीजें ना हो। इस मामले का निपटारा सही समय और सही तरीके से बहुत जरूरी है। 1992 में मस्जिद ढहाने के कारण कई आतंकवादी हमले हुए जिसने लोकतंत्र को हिला कर रख दिया। खासकर मुजाहिदीन के जो आतंकवादी पकड़े गये। उन्होंने ये बात इंटेरोगेशन में साफ कही है कि बाबरी मस्जिद ढाहने का बदला ले रहे हैं। भारत की छवि को (धर्मनिरपेक्षता, कानून एवं संविधान को मानने वाला) बहुत बडा झटका पहुंचा। कई देशों ने निंदा की कि भारत सरकार अल्पसंख्यकों की रक्षा नहीं कर पाई। फिर 2002 में जो गोधरा कांड हुए थे, गुजरात में उनका कारण भी मूल रूप से अयोध्या ही है। उसके बाद गुजरात में दंगे शुरू हुए थे। अयोध्या के मुद्दे ने भारत में राजनीति और धर्म के बीच की जो सीमा है उसे थोडा धुंधला कर दिया है। पहले राजनीति में धर्म था लेकिन अस्सी के दशक से जब से अयोध्या का मुद्दा उभरा है तब से धार्मिक भावनायें राजनीति में बहुत ज्यादा हावी हो गई है और अब तो ये राजनैतिक मुद्दा हो गया है। अब तो हर चुनाव के पहले भाजपा अपने घोषणा-पत्र में डालती है कि राम

मंदिर बनवाना है। सरकार का काम एक अच्छा प्रशासन देना, अच्छी व्यवस्था देना एवं कानून व्यवस्था बनाये रखना है। इंजीनियर असगर अली ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है, "न्यायमूर्ति लिब्रहान ने जो कहा है वह बिल्कुल सच है। राम जन्म भूमि मंदिर का निर्माण कभी बहुसंख्यक हिन्दुओं की मांग नहीं थी और बाबरी मस्जिद को गिराना तो कतई नहीं। आंदोलन के दौरान अपने भाषणों में आडवाणी और संघ के अन्य नेताओं ने कभी यह संकेत नहीं दिया कि उनका इरादा बाबरी मस्जिद को ढहाने का है। इस बात की प्रबल सम्भावना है कि आम हिन्दुओं को यह स्वीकार्य नहीं होता।"[26] धर्मनिरपेक्षता मूलतः एक राजनैतिक सिद्धांत है। सभी राजनैतिक दलों को धर्मनिरपेक्षता को अपने राजनैतिक दर्शन के भाग के रूप में मान्यता देनी होती है। चुनाव आयोग के नियमों के अनुसार चुनावों में सभी उम्मीदवारों को धर्मनिरपेक्षता के प्रति अपनी निष्ठा की घोषण करनी होती है। इन परिस्थितियों में किसी भी ऐसी पार्टी को धर्मनिरपेक्ष कैसे कहा जा सकता है जो दिन-रात हिन्दुत्व की दुहाई देती हो।

दुःखद बात तो यह है कि राजनेता भी हमारे समाज को धार्मिक आधारों पर बांटते इसलिए हैं क्योंकि यह धार्मिक आधारों पर बंटा हुआ है। दुनिया के सभी देशों में विशेषकर एशियाई और अफ्रीकी देशों में धर्म ही राजनैतिक घटनाक्रम की दिशा तय करता है। यह स्थिति आधुनिक प्रजातंत्र का एक नासूर है। हमारे देश में खेली जा रही सांप्रदायिक राजनीति के चलते ही देश के दो टुकड़े हुए और उस विभाजन की त्रासदी को आज भी झेल रहे हैं। बाबरी दंगों के बाद देश में कुछ वर्षों तक तुलनात्मक रूप में कम दंगे हुए केवल बाबरी मस्जिद के ढहाए जाने के बाद बड़ा दंगा 2002 में गुजरात हिंसा के रूप में सामने आया। ऐसा देखा गया है कि हर बड़े दंगे के बाद कुछ वर्षों तक व्यापक हिंसा नहीं होती। बाबरी मस्जिद को ढहाए जाने के बाद 1992-93 में हुए दंगों के बाद अगला बड़ा दंगा मुम्बई में नहीं बल्कि गुजरात में हुआ। अस्सी के दशक में हुए बड़े दंगों में से कोई भी एक ही स्थान पर नहीं हुआ। गुजरात के बाद से कोई बड़ा दंगा देश में नहीं हुआ। फिर सन् 2006 में कई छोटे-मोटे दंगे देश

के विभिन्न हिस्सों में हुए। सांप्रदायिक ताकतें चुप नहीं बैठती हैं। अपने वर्चस्व को बनाये रखने के लिए जगह-जगह पर छुटपुट दंगे करवाती रहती हैं। 2006 में 17 जनवरी को बड़ौदा (गुजरात) में पहला दंगा हुआ। 3 फरवरी को मध्यप्रदेश के धार में नमाज के लिए जा रहे मुसलमानों और पूजा के लिए भोजशाला मंदिर जा रहे हिन्दुओं के बीच हिंसा हुई। इसी वर्ष 14 फरवरी को कश्मीर के लेह में मुसलमानों और बौद्धों के बीच सांप्रदायिक हिंसा हुई। 17 फरवरी को मुजफ्फरनगर में इस्लाम के पैगम्बर के कार्टूनों के मुद्दे को लेकर दो समुदायों के बीच हिंसा हुई। 2013 में भी मुजफ्फरनगर में होने वाले दंगे का कारण एक मुस्लिम लड़के ने एक हिन्दू लड़की के साथ छेड़खानी की। दूसरा कारण सड़क दुर्घटना बताई जाती है। इसी प्रकार 2006, 2007, 2008, 2009 से लेकर 2018 तक सांप्रदायिक दंगों का कारण क्रिकेट खेलने, स्कूटर की टक्कर से किसी के गिर जाने या पटाखे फोड़ने जैसे विवादों से शुरू होता है। ऐसी ही कुछ घटनाएं हाल फिलहाल में 2018 में देखने को मिली। इसे स्पष्ट करने के लिए यहां एक घटना का उल्लेख किया जा सकता है। 26 जनवरी 2018 को 69वें गणतंत्र दिवस पर कासगंज (उ.प्र.) में हिंसा भड़की। कासगंज पश्चिमी उत्तरप्रदेश का जिला है। विहिप, बजरंग दल, एबीवीपी के लोग बाईक रैली निकाल कर तिरंगा मार्च निकाल रहे थे। इस कार्यक्रम की प्रशासन से कोई अनुमति नहीं थी। जब ये यात्रा निकल रही थी वही बटू नगर जो मुस्लिम बहुल इलाका है वहां पर लोग कुर्सियां लगा कर तिरंगा फैलाने का कार्यक्रम कर रहे थे। बाइक रैली वालों ने मांग की कुर्सियों को तुरंत हटाया जाये ताकि रैली को आगे बढ़ाया जाये। वो नारे लगा रहे थे बाइक तो यही से निकलेगी। कार्यक्रम कर रहे लोगों ने कहा कि तिरंगा फैलाने से पहले कुर्सियां नहीं हट सकती। इसी बीच दोनों गुटों में आपस में झड़प हुई; जिसने हिंसात्मक रूप ले लिया। बहुत सारी दुकानों को तोड़ा फोड़ा गया। खासतौर पर मुस्लिमों की दुकानों में आग लगाई गई। ये भी देखने की बात है जब भी इस तरह की हिंसा होती है तो सबसे पहले अल्पसंख्यकों चाहे दलित हो या मुस्लिम उनके आय के साधनों को नुकसान पहुंचाया जाता

हैं। इस घटना को राजनीतिक पार्टियों ने अपने अपने तरीके से भुनाया। इसी बीच सपा के उपाध्यक्ष किरणमय नंदा ने महत्त्वपूर्ण बात की। सबसे पहले तो घटना की निष्पक्ष जांच की, दूसरा उन्होंने कहा कि हमेशा लोकसभा चुनाव से पहले ही ऐसे दंगे क्यों होते हैं। मुजफ्फरनगर दंगा भी लोकसभा चुनाव से पहले हुआ था। कासगंज भी कुछ ऐसा ही हो रहा है जब 2019 में लोकसभा चुनाव है। उन्होंने इसे चुनाव से जोड़ते हुए कहा लेकिन ये एक महत्त्वपूर्ण दृष्टि है। मुजफ्फरनगर के सांप्रदायिक दंगों ने ही जिस प्रकार विभाजन किया था उसके बाद से ही यू.पी. की राजनीति में जिस प्रकार का ट्रेंड दिखने लगा। वो आज तक देखने को मिल रहा है। यूपी के जो चुनाव रहे उन तक उसका प्रभाव देखने को मिला। जांच होने पर हिंसा से जुड़े लोगों के घर में हथियार पाये गये। आख़िर मुजफ्फरनगर के समय भी और कासगंज के समय भी ये प्रश्न है कि इस प्रकार के हथियार आम लोगों के घर में आते कहाँ से हैं। ये भी सवाल उठता है। बहरहाल 2017 में एक पैटर्न देखने को मिला है। अगर ध्यान दिया हो तो भीड़ का, लागों का हत्यारों में तब्दील होना। ये पता नहीं विकास का कौन सा रूप था जिस तरीके से हम विकास की बातें कह रहे हैं। वहां पर लोग धीरे-धीरे हत्यारों और कातिल में तब्दील हो रहे हैं। शुरूआत होती है अखलाक से, पहलू खान से, जुनैद से इन सारे लोगों में हम देख रहे हैं कि लोग घर में घुस कर, ट्रेनों तक जो लींचिंग की घटनायें थीं पीट-पीट कर किसी को मार देने की घटना थी। भीड़ की ये घटनाएं सबसे ज्यादा देखने को मिली। राजस्थान के शहर अलवर में लींचिंग की घटनाएं हुई थी और 2017 में भीड़ का पीट-पीट कर हत्या कर देने का चलन बहुत ज्यादा देखने को मिला। दूसरी सहारनपुर शबीरपुर की हिंसा जिसमें बीस दिनों तक जाति आधारित हिंसा चली। तीसरा अफराजो जो बंगाल का एक श्रमिक था जिसको शंभुनाथ नाम के एक व्यक्ति ने जला कर उसका विडियो वायरल किया था। जो ये इस तरह की हिंसात्मक घटनाएं हो रही हैं, इस तरह का क्रूर रूप भीड़ का लोगों का देखने को मिल रहा है और जिसका नाम दिया जा रहा है राष्ट्रवाद के लिए, देश के लिए, हिंदुत्व के लिए, हिंदू राष्ट्र के लिए वो एक खतरे की

घंटी है। कासगंज हिंसा का कारण आपत्तिजनक नारे बताये जा रहे हैं। अगर आपतिजनक नारों पर हिंसा हुई तो सवाल उठता है वो कौन से नारे हैं जिन पर हिंसा हुई। सवाल ये नहीं है कि वंदे मातरम् के नारे लगाने चाहिए या नहीं। सवाल है कि वो कौन लोग हैं जो समाज के ठेकेदार बनकर आप पर हिंसा करते हुए कह रहे हैं कि वंदे मातरम का नारा अभी लगाओ और अभी लगाओ। मीडिया ने यह खबर दिखाई कि तिरंगा फैलाने पर दंगा। मीडिया के कुछ रिपोटर्स कह रहे थे कि अभी तक कश्मीर में तिरंगा नहीं फहरा सकते थे, केरल में नहीं फहरा सकते थे तो अब क्या उत्तर प्रदेश में भी नहीं फहरा सकते हैं। भगतसिंह लिखते हैं, "अखबारों का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, सांप्रदायिक भावनाएं हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य अज्ञान फैलाना संकीर्णता का प्रचार करना, सांप्रदायिक बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है।"[27]

सोचने वाली बात है क्या सचमुच यह दंगा तिरंगे को लेकर था। अगर कासगंज हिंसा का विडियो ध्यान से देखा जाये तो समझ आयेगा कि यह राष्ट्रीय ध्वज का सवाल नहीं था। देश का सवाल नहीं था। रैली पर जो लोग निकल रहे थे वो भगवा झंडा भी लिए हुए थे। इंजीनियर असगर अली ने उल्लेखित किया, ''आरएसएस हमारे देश की साझा संस्कृति के स्थान पर विशुद्ध हिन्दू संस्कृति की स्थापना करना चाहता है।''[28] यह तिरंगे पर दंगा नहीं हुआ है। किसी को राष्ट्रभक्त और राष्ट्रद्रोही बनाने की जो छवि है, खासतौर पर मुस्लिम समुदाय को देशद्रोही बनाने की जो छवि है, उस पर भी हमें गौर फरमाने की जरूरत है कि वो मुस्लिम समुदाय था जो वहां पर राष्ट्रीय ध्वज के कार्यक्रम के लिए ही एकत्रित हुआ था।

दूसरी बात यह है कि जो भी ये सांप्रदायिक हिंसायें हो रही हैं उसमें हम शासन की सरकार की नाकामी तो देख ही रहे हैं। लेकिन इसको नाकामी तक सीमित कर देना भी ठीक नहीं है, क्योंकि नाकामी के साथ-साथ हिन्दुत्व दक्षिण पंथी विचारधारा का भी एक इनफोर्समेंट

देखने को मिल रहा है। साथ ही उत्तर प्रदेश में एक घटना हुई जिसमें कार्यालय से लेकर कैफरवर्क थाने तक भगवा करवाये गये वो भी चिंताजनक स्थिति है कि धर्म के साथ-साथ रंग की राजनीति में हिन्दू और मुसलमान को बांटने का काम हो रहा है।

क्या सिर्फ़ एक वोटबैंक के लिए। एक ओर बात जिस पर गौर करना चाहिए। इससे पहले कौन सा मुद्दा सुर्खियों में था। वो था मोदी जी का साक्षात्कार जिसमें रोजगार की बात हुई थी। मोदी ने कहा था पकोड़े बेचने को जिसको रोजगार माना जाना चाहिए। जब भी रोजगार की बात होती है, शिक्षा की बात होती है या अस्पताल में एक ही दिन में बहुत सारे बच्चे मरते हैं, शिक्षा का कोई घोटाला सामने आता है, भ्रष्टाचार का घोटाला सामने आता है, आसिफा केस होता है, रोजगार का घोटाला सामने आता है और सरकार से सवाल किया जाता है तो ही क्यों ऐसे दंगे होते हैं। क्यों दिशा हमेशा ऐसे दंगों की तरफ मोड़ दी जाती है और हमारा युवा सोचने लग जाता है इन दंगों के बारे में, सांप्रदायिकता के बारे में, हिन्दू, मुस्लिम, सिख, बौद्ध के बारे में, इन हिंसाओं के बारे में और जो बुनियादी मुद्दे हैं उनसे डिबेट को फिर से हटा दिया जाता है। ऐसी ही कुछ घटनायें हाल फिलहाल में पश्चिम बंगाल, यूपी, बिहार, राजस्थान में देखने को मिली।

इन सब स्थितियों का इलाज आम जनता के हाथों में है जब तक जनता सांप्रदायिक और जातिवादी राजनीति करने वाले नेताओं को दरकिनार नहीं करेगी। तब तक ये नेता समाज को बांटते जायेंगे, प्रतिबद्ध बुद्धिजीवियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं का भी यह कर्तव्य है कि वे लोगों के बीच जायें और उन्हें समझायें कि नेता किस तरह धर्म का इस्तेमाल राजनीति में कर रहे हैं। धर्म का संबंध आस्था से है राजनीति से नहीं। विश्व में जो भी काम होता है, उसकी तह में पेट का सवाल जरूर होता है। कार्ल मार्क्स के तीन बड़े सिद्धांतों में से यह एक मुख्य सिद्धांत है। इसी सिद्धांत के कारण तबलीग, तकनीम, शुद्धि आदि संगठन शुरू हुए और इसी कारण से आज हमारी ऐसी दुर्दशा हुई, जो अवर्णनीय है। सभी दंगों का इलाज यदि हो सकता है तो वह

भारत की आर्थिक दशा में सुधार से ही हो सकता हैं, क्योंकि भारत के आम लोगों की आर्थिक दशा खराब है जिसके कारण मनुष्य सभी सिद्धान्त ताक पर रख देता है। लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब, मेहनतकशों व किसानों को यह साफ समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हो, अधिकार एक ही हैं। यह विशेष रूप से ध्यान देने वाली बात है सांप्रदायिक ताकतों ने मुख्य रूप से बेरोजगार युवाओं को अपनी ओर अकर्षित किया है। फ्रायड के मनोवैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग किया जाये तो हिन्दू और मुस्लिम दोनो संप्रदायवादियों ने युवाओं की आर्थिक और सामाजिक हताशा का अपने स्वार्थों के लिए दोहन किया।

एक महत्त्वपूर्ण बात चुनावी रणनीतियाँ जातिगत और सांप्रदायिक गणित पर आधारित हैं। ऐसे में धर्मनिरपेक्षता में मूल्यों पर कायम रहना सरकारों के लिए सम्भव नहीं लगता। हमारे देश में पार्टियाँ इस या उस समुदाय या जाति के वोट हासिल करने के उद्देश्य से काम करती हैं। ऐसे में यदि कम से कम 51% मत प्राप्त करने की अनिवार्यता होगी तो पार्टियाँ सभी समुदायों और जातियों का समर्थन हासिल करने की कोशिश करेंगी। इससे धर्मनिरपेक्षता, सौहार्द, अखण्डता मजबूत होगी।

2.3 सांप्रदायिकता और हिंदी कहानी :

सांप्रदायिकता साम्राज्यवाद की कोख से जन्मी उसकी अवैध संतान है जिसका एकमात्र उद्देश्य साम्राज्यवाद के हितों को पोषित करके जनतंत्र और स्वाधीनता की चेतना एवं संघर्ष को कुंद करना होता है। 1857 की क्रांति को ब्रिटिश साम्राज्यवाद चाहे दबाने में सफल रहा हो लेकिन इसने उनकी सत्ता को हिला दिया था। 1857 की क्रान्ति हिन्दू-मुस्लिम एकता का इजहार इस अर्थ में थी कि हिन्दुओं ने स्वयं मुगल बादशाह को अपना नेता चुना था। हिंदु

मुस्लिम एकता के इस प्रदर्शन से अंग्रेज शासक घबरा गये और 1857 के बाद से उन्होंने बड़े योजनाबद्ध तरीके से हिंदुओं और मुसलमानों के बीच खाई खोदने का काम शुरू कर दिया। जितना यह सच है उतना ही सच यह भी है कि आज हमनें स्वयं ही हिन्दू मुसलमानों के बीच की खाई को गहरा कर दिया है। भारतेंदु युग में लेखकों द्वारा इस जातीय सद्भाव के पोषण और संवर्धन के प्रयास अवश्य हुए, लेकिन मुसलमानों के प्रति लंबे समय से चलते रहे अविश्वास और विद्वेष के फलस्वरूप इस प्रयास की सीमाएँ तथा अंतर्विरोध भी बहुत स्पष्ट है। यह जातीय सद्भाव ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कूटनीति को विफल करने के लिए जरूरी था। लेकिन मुसलमानों की भूमिका को लेकर अनेक हिंदू लेखक पूरी तरह आश्वस्त नहीं थे। अंग्रेजों द्वारा उन्हें हिंदुओं के विरुद्ध उकसाकर और विद्वेष की भावना को हवा देने के कारण यह अविश्वास कम होने के बजाय बढ़ने की संभावना अधिक थी।

धीरे-धीरे लेखकों को यह लगने लगता है कि स्वाधीनता की लड़ाई एक साझा लड़ाई है जिसे आंतरिक सद्भाव को बनाए रखकर ही सफलतापूर्वक लड़ा जा सकता है। जिस सीमा तक इस सद्भाव को पोषित किया जा सकेगा उसी अनुपात में स्वाधीनता और जनतंत्र की भावनाओं का विकास संभव होगा और उसी के आधार पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों एवं अस्तित्व पर आक्रमण किया जा सकता है। अपने स्वार्थों में लिप्त रहने के कारण अंग्रेजों को प्रायः हमेशा ऐसे लोग मिलते रहे जो अपने तात्कालिक लाभ के लिए राष्ट्रीय हितों को आघात पहुँचाते रहे। मुस्लिम लीग की स्थापना और उसके परिणामस्वरूप दो विभाजन की घटना उस साम्राज्यवादी षड्यंत्र का परिणाम थे। जिसका खामियाजा आज तक भुगत रहे हैं।

भारतीय कथा साहित्य में प्रेमचंद कदाचित पहले लेखक हैं जिन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में इस जातीय सद्भाव के महत्व को समझा और भारी जोखिम उठाकर उसके विकास का रास्ता तैयार किया। 1909 में उर्दू में प्रकाशित उनके प्रथम कहानी-संग्रह 'सोजेवतन' की कहानियाँ मुस्लिम परिवेश और पृष्ठभूमि की हैं जिनमें स्वाधीनता की चेतना

पर दिया गया बल ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतिनिधियों को राजद्रोह लगा। राजद्रोह से बड़ा खतरा उन्हें उसमें जातीय सद्भाव का बढ़ावा दिख रहा था जो साम्राज्यवादी कूटनीति की विफलता के लिए कटिबद्ध था। एक हिंदू लेखक द्वारा मुस्लिम पात्रों और उनकी अस्तित्व को खतरे में डाल रहा था। जिसके कारण 'सोजेवतन' की ज़ब्ती का फरमान जारी किया गया। लेकिन वे इस जातीय सद्भाव को दिखाने से रुके नहीं। जितेन्द्र श्रीवास्तव लिखते हैं, "उन्होंने अपनी 'मुक्ति धर्म' कहानी में दिखलाया है कि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के धर्म को आदर की दृष्टि से देखते हैं"[29] उनके समकालीनों ने भी हिन्दू-मुसलमान पात्रों को लेकर रचनायें रची, लेकिन उनमें एक द्वंद की स्थिति दिखी। वहीं प्रेमचंद मुस्लिम जनजीवन को चित्रित करके हिंदू मुस्लिम के बीच एक सौहार्दता कायम करते हैं। ईदगाह, कर्बला, नशा हिंदू-मुस्लिम एकता संबंधी कहानियां हैं। स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में जिसके महत्व के प्रति उदासीन बने रहना लगभग असंभव था। जयशंकर प्रसाद ने भी हिंदू-मुस्लिम पात्रों को लेकर कहानियाँ लिखीं।

लेखकों ने स्वतंत्रता से पूर्व जहां मुस्लिम-हिंदू एकता को बनाये रखने का अंकन अपनी रचनाओं में किया, वहीं विभाजन की त्रासदी के दौरान और पश्चात् मानवीय यातना और हताशा के बावजूद उस मानवीय तत्व के संरक्षण पर जोर दिया जिसे अभी भी पूरी तरह नष्ट नहीं किया जा सकता था। प्रेमचंद धर्म और राजनीति को बारीकी से देखते हुए कांग्रेस में होते हुए भी कांग्रेस की वहाँ-वहाँ आलोचना करते हैं जहाँ ब्रिटिश साम्राज्यवाद से गलत समझौतों के परिणामस्वरूप देश की स्वतंत्रता के साथ जिस राष्ट्रव्यापी विभीषिका का सामना देश की जनता को करना पड़ा। इस पृष्ठभूमि को लेकर अनेक कहानियाँ लिखी गई। सन् 1931 में कानपुर और काशी के दंगों के बाद असहयोग के सन्दर्भ में कांग्रेस की आलोचना करते हुए उन्होंने साफ-साफ लिखा "कांग्रेस ने मुसलमानों को अपना सहायक बनाने की ओर उतनी कोशिश नहीं कि, जितनी करनी चाहिए थी। वह हिन्दू सहायता प्राप्त करके ही सन्तुष्ट रह

गयी।''[30] आजादी के बाद विभाजन पर अनेक कहानियाँ लिखी गई जिनमें मानवीय संरक्षण पर बल दिया गया। अमृतलाल नागर की कहानी 'आदमी नहीं! नहीं!' विभाजन की पृष्ठभूमि में सांप्रदायिक सद्भाव और राजनीति के क्षेत्र में समान कार्यभारों का अंकन यशपाल ने 'झूठा-सच' में किया। मुस्लिम जनजीवन पर 'प्रेम का सार' 'परदा' आदि कहानियाँ लिखी। प्रेमचंद के बाद प्रगतिवादी लेखकों ने सांप्रदायिक सौहार्द को समझा और अनेकों कहानियाँ लिखी। अज्ञेय ने 'बदला' में इस तथ्य को रेखांकित किया कि मनुष्य अपना सब कुछ खोकर भी मानवीय विवेक से भलाई में अपने विश्वास को टूटने से बचा सकता है। जिस धर्म के लोगों ने उस बूढ़े सिख का सब कुछ छीनकर आज उसे इस हालत में पहुँचा दिया है, उसी धर्म के लोगों की रक्षा वह एक मिशनरी उत्साह से करता घूमता है। हर आने-जाने वाली गाड़ी पर वह दिल्ली के लोगों को अलीगढ़ पहुँचाता है और अलीगढ़ के लोगों को दिल्ली। उसके अपने साथ शेखपुरे में जो कुछ गुजरा है उसका बदला यही हो सकता है कि फिर और किसी के साथ वह सब कुछ न हो। उसके लिए एक स्त्री का अपमान हिंदू या मुसलमान से अधिक इंसान की माँ की बेइज्ज्ती का सवाल बन जाता है। अज्ञेय ने 'लेटरबॉक्स', 'शरणदाता', 'बदला' कहानियाँ देश विभाजन की पृष्ठभूमि और मानवीय सौहार्द का अंकन करने वाली अनेक कहानियाँ लिखी। स्थितियों का भावुकतापूर्ण अंकन और पात्रों पर अपनी भावनाओं को आरोपित कर देने के परिणामस्वरूप कहानियों का प्रभाव सदा एक सा नही पड़ता परन्तु उनमें उस मानवीय सौहार्द की अंतर्धारा को हमेशा देखा जा सकता है जो हताशा के क्षण में मनुष्य का साथ नही छोड़ती। मंटो की 'खोल दो' और 'टोबा टेक सिंह' कहानियाँ मानवीय यातना का अत्यंत करूण और विडम्बनापूर्ण होने के साथ मानवीय सद्भाव पर विशेष रूप से बल देने वाली कहानियाँ हैं जो घोर अंधकार और हताशा में भी मनुष्यता का दिशा-निर्देशन करती हैं।

पाकिस्तान के बनने से अपनी जड़ों से कटने और सदियों से बसे-बसाए जीवन के उजड़ने से आम आदमी की यातना और हताशा को लेकर अनेक रचनाएं लिखी गईं। कृष्णा

सोबती की 'सिक्का बदल गया' भारत-पाक विभाजन के दर्द को बड़ी गहनता से उकरेने वाली कहानी है। 'डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा' आदि उनकी ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा' में मिट्टी के मिट्टी में मिल जाने के बावजूद पथराई आंखों के बीच यह विश्वास कहीं दृढ़ता के साथ चिपका रह जाता है कि रक्षा के लिए उठी ड्राइवर की स्थिर हो गई बाँहें, मानवीय सद्भाव का अमिट आवासन बनकर हमेशा उसके साथ है। बदीउज्जमाँ ने अपनी अनेक कहानियों में बिहारी मुसलमानों की पीड़ा को चित्रित किया है जो अपनी जड़ों से कटकर रेत में पड़ी मछली की तरह छटपटाता है। अपनी सुप्रसिद्ध कहानी 'अमृतसर आ गया है' में भीष्म साहनी उद्घाटित करते हैं गाड़ी जब रवाना होती है तो डिब्बे में वैसी कोई बात नहीं है। हंसोड़ पठानों द्वारा मरियल से हिन्दू बाबू की खिंचाई में कहीं कोई दुर्भावना नहीं है पंजाबी जीवन का बेतकुल्लफ खुलापन उनके पोर-पोर में बसा है। वे जिस तरह से बाबू से बात करते हैं, 'दालखोर' कहकर उसके दुबले होने का मजाक उड़ाते हैं। वह सब उसे स्वयं भी बुरा नहीं लगता। पोटली खोलकर खाते समय वे मांस की बोटी और रोटी उसकी और बढ़ाकर खाने का आग्रह करते हैं ताकि वह अपनी बीबी को खुश कर सके और उसके न खाने पर हंसते हुए छिपकर खा लेने का सुझाव देते हैं ताकि किसी को पता न चले। इस सारी बातों में उनके व्यवहार का खुलापन ही प्रकट होता है। उनकी बातों से खीझकर बाद में बाबू मन में बुरा भले ही मानता हो लेकिन जाहिर तौर पर वह भी उनके साथ हँसता और मजा लेता है। बाबू के लिए कई बार 'खंजीर का तुख्म' कहना गाली न होकर तकिया-कलाम जैसा है जिसका ताल्लुक दुर्भावना से न होकर आदत से है। माला जपती बूढ़ी औरत डिब्बे में चढ़ने वाले हिंदू परिवार के प्रति सहानुभूति से विचलित हो उठती है। उस परिवार के आदमी से, जो मैले और चिकनाई आलूद हलवाई जैसे कपड़े पहने है, शहर में हुए दंगे की बात सुनकर डिब्बे में जैसे एकाएक गर्म और संक्रामक हवा का पहला झोंका आता है। आदमी की घबराहट और बदहवासी के बावजूद पठानों द्वारा उसके परिवार को डिब्बे से उतार देने के पीछे भी सांप्रदायिक द्वेष नहीं, सुविधा का ख्याल ही अधिक है। आवेश में आकर उस आदमी को पठान द्वारा मारी गई लात महज एक आकस्मिक क्रिया है जिसके लिए बूढ़ी औरत तक पठान की मजम्मत करती है। लेकिन उसके बाद गाड़ी चल देने पर, शहर में दंगे में लगाई गई आग की लपटें जो गाड़ी में से दिखती हैं और जगह-

जगह दंगाइयों की भीड़ का शोर डिब्बे में एक विशेष प्रकार का तनाव पैदा कर देता है। थोड़ी देर पहले का हंसी-मजाक वाला खुशनुमा माहौल एक बोझिल सन्नाटे में तब्दील हो जाता है। थुलथुल शरीर वाले सरदार जी पठानों के पास से उठकर हिंदू मुसाफिर के पास बैठ जाते हैं और नीचे बैठा हुआ एक पठान ऊपर चढ़कर अपने साथियों में जा मिलता है। डिब्बा बाकायदा 'हिंदू' और 'मुसलमान' में बंट जाता है। इसके बाद ऐसा कुछ होता जाता है कि तनाव और आशंका की भाषा को आसानी से पढ़ा जा सकता है। जैसे ही हखंसपुरा निकलता है और गाड़ी अमृतसर की ओर बढ़ती है उस मरियल से बाबू में जैसे कोई सोचा हुआ जिन जाग जाता है। अब पठानों को लेकर उसकी कटुता अपनी प्रकृति में पूरी तरह 'हिंदू' है - जैसे वह हिंदू मुसाफिर को डिब्बे से ढकेले जाने का बाकायदा बदला ले रहा हो। जब थुलथुला सरदार बाबू की प्रशंसा करता है तो लेखक की टिप्पणी है .... 'बाबू जवाब में मुस्कुराया.....एक वीभत्स सी मुस्कान और देर तक सरदार के चेहरे की ओर देखता रहा .....' उसकी मुस्कान की यह वीभत्सता ही इस सांप्रदायिक उन्माद पर लेखक की अपनी टिप्पणी है।

सांप्रदायिक उन्माद का एक दौर स्वाधीनता के पूर्व दिखाई देता है, जिसका चरमोत्कर्ष देश विभाजन और विस्थापित के समय प्रकट हुआ तो दूसरा दौर स्वाधीनता के बाद अनेक शहरों में हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगे और सन् 84 में इंदिरा गांधी की हत्या के अवसर पर दिल्ली और दूसरे शहरों में हुए हिंदू-सिख दंगे हैं। पंजाब में आतंकवाद सरकार की अपनी नीतियों का परिणाम था। दिल्ली में हुए इन दंगों की पृष्ठभूमि पर अनेक कहानियां लिखी गईं। मृदुला गर्ग की 'अगली सुबह' कहानी में इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद दिल्ली में होने वाले सांप्रदायिक दंगों का चित्रण हुआ है। दंगों में शामिल रहने वाले लोग तात्कालिकता से कुछ इस तरह ग्रस्त हैं कि भविष्य के बारे में सोचने की उन्हें कुछ जरूरत ही महसूस नहीं होती। दंगों में जिम्मेदार व्यक्ति आज भी सत्ता में भागीदार है और सफलता के उन्माद में वे अपने से तीन गज दूरी पर देख पाने में असमर्थ है।

हिंदी कहानी में सक्रिय सभी पीढ़ियों के कहानीकारों ने प्रायः इस बात का उल्लेख किया है कि दंगों, विद्वेष में आम जनता की ना कोई भूमिका होती है बल्कि आम जनता इस प्रकार की विषम

परिस्थितियों में पारस्परिक सौहार्द बनाए रखकर संकट के समय एक दूसरे की सहायता भी करती है। भीष्म साहनी की 'झुटपुटा', ह्रदयेश की 'अफवाहें', मृदुला गर्ग की 'अगली सुबह', स्वयं प्रकाश की 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा हैं?' में जाति, धर्म, संप्रदाय से अलग मानव की उस संवेदना को व्यक्त किया है जिस कारण कोई भी समाज अपेन उच्चतर मानव-मूल्यों के साथ जीवित रहता है। भीष्म की 'झुटपुटा' कहानी की कथा इंदिरा गांधी की हत्या के उपरांत हिंदुओं का सिखों पर अमानवीय व्यवहार, हिंसा, लूट-पाट, विद्वेष पर आधारित है। इन घटनाओं का वर्णन करने के बाद पीड़ित सिखों की जिजीविषा और सद्भाव बनाए रखने वाले विवेक को गहरी समझ के साथ चित्रित किया है। दूध की लाइन में खड़े प्रो.कन्हैयालाल की संवेदनात्मक सोच को अभिव्यक्त करता है। दूध बूथ तक नहीं पहुँचा था, क्योंकि दूध को पहुँचाने वाले ड्राइवर सरदार जी थे। कोई भी सरदार अपनी जान जोखिम में नहीं डालना चाहता था। लेकिन एक सरदार ड्राइवर इन्सानियत का तकाजा देते हुए तमाम खतरे मोल उठाकर दूध-पहुँचाता है। प्रो. कन्हैयालाल के पूछने पर वह कहता है, "बाबा, बच्चों ने दूध तो पीना है ना! मैंने कहा, चल मना, देखा जाएगा जो होगा। दूध तो पहुँचा आयें।'' खतरा उठाकर सिख ड्राइवर का दूध पहुँचाना, स्त्रियों और बच्चों पर ढहाए गए अत्याचार, मित्रों और पड़ोसियों की सहायता की छोटी-बड़ी कोशिशें यही सब इन कहानियों में संवेदना और गहरी समझ के साथ अंकित हुआ है, सीमाओं का विभाजन होने से मनुष्य की संवेदनाओं का विभाजन नहीं होता है। मोहन राकेश अपनी कहानी 'मलबे का मालिक' में बूढ़े मुसलमान के माध्यम से कहलवाते हैं, "सब कुछ बदल गया, मगर बोलियाँ नहीं बदली।''

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमें एक न्यायपूर्ण समाज बनाने की कोशिश करनी चाहिए। साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से इस कोशिश को करने का भरपूर प्रयास किया है। एक ऐसा समाज जो अपने सारे नागरिकों की मूल आवश्यकताओं के बारे में फिक्रमंद हो और जो सभी नागरिकों चाहे वे किसी भी धर्म, जाति या वर्ग के हों को पूरी सुरक्षा प्रदान करे तभी हम सांप्रादयिक ताकतों के कुत्सित षड्यंत्रों को विफल कर सकेंगे। 'बम के बदले बम', 'लाश के बदले लाश' जैसे उत्तेजक नारों से कुछ होना-जाना नहीं है।

साहित्य का उद्देश्य जीवन को सही दिशा एवं ज्ञान देना होता है तभी तो कहा गया है अच्छी किताबें मनुष्य की अच्छी दोस्त होती हैं। मैंने 'सांप्रदायिकता और हिंदी कहानी' अध्याय में कोशिश की है उन कहानियों को सामने रखने की जो मानवीय पीड़ाओं और यातनाओं को दिखाने के साथ मानवीय सद्भाव की उस भावना को उद्घाटित करती हैं जो वैमनस्य, हिंसा के माहौल में भी मनुष्य के विवेक को खोने नहीं देता है। देखिए भारत एक लोकतंत्र है और एक लोकतंत्र लंबे समय तक सफलता के साथ चलना चाहता है तो वहां पर सौहार्द, बंधुता जैसे मूल्यों को बनाए रखना आवश्यक है। भारत में धार्मिक भावनायें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। भारत के लोग बहुत ज्यादा धार्मिक हैं और इन धार्मिक भावनाओं की कद्र करनी होगी। हर धर्म को एक दूसरे धर्म की धार्मिक भावनाओं को इज्ज़त देनी होगी। इसी के साथ मिल जुल कर आगे बढ़ सकते हैं। पहले अशोक सिंहल जैसे नेता थे जो अब नहीं रहे, लाल कृष्ण आडवाणी जैसे नेताओं की राजनीति में उपस्थिति लगभग ना के बराबर सी है। नेताओं की आम नागरिकों की एक नई पीढ़ी उभरकर आ रही है। अब ये हम पर है कि हम विभाजन, मध्यकालीन इतिहास, राममंदिर विवाद, गोधरा कांड, मुजफ्फरनगर दंगा आदि को कैसे संभालते हैं। ऐसी स्थिति में कबीर की निम्न पंक्तियां हमें याद आती हैं :

कहै हिन्दु मोहि राम पिआरा, तुरक कहे रहिमाना।

आपस में दोऊ लरि-लरि मुए, मरम न कोऊ जाना।

संदर्भ

1. काश्यप, डॉ. सुभाष एवं गुप्त, विश्वप्रकाश; राजनीति कोश; हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 10 कैवेलरी लाइन, दिल्ली-110007; संस्करण: 2015; पृ.81
2. दिनकर, रामधारी सिंह; संस्कृति के चार अध्याय; लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2012; पृ.660
3. वही; पृ.268
4. गांधी, महात्मा; हिन्दू-धर्म क्या है?; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070; संस्करण; 1993; पृ.1
5. नेहरू, जवाहर लाल; हिन्दुस्तान की कहानी; सस्ता साहित्य मण्डल, एन-77 पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001; संस्करण: 2015, पृ. 88
6. कपूर, मस्तराम; धर्म से पिंड छुडाए बिना बर्बरता से मुक्ति नहीं है, धर्म प्रासंगिकता के सवाल (सं. पंकज बिष्ट); समयांतर प्रकाशन, 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095; पृ.142
7. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ.120
8. नेहरू, जवाहरलाल; टण्डन, हिन्दुस्तान की कहानी; सस्ता साहित्य मण्डल, एन-77 पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001; संस्करण: 2015; पृ.314
9. गांधी, महात्मा; हिन्दू-मुसलमान; साम्प्रदायिकता का जहर (सं. डॉ. रणजीत); मानवीय समाज प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, संस्करण: 2011; पृ.19
10. वही; पृ.19
11. नेहरू, जवाहरलाल; हिन्दुस्तान की कहानी; सस्ता साहित्य मण्डल, एन-77 पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001; संस्करण: 2015, पृ.153
12. वही; पृ.265
13. वही; पृ.383
14. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/bjp-gains-in-polls-after-every-riot-says-yale-study/articleshow/45378840.cms Date: 03.06.2018
15. https://theprint.in/pageturner/excerpt/veer-savarkar-hindutva-india/38073/ Date: 03.06.2018
16. https://theprint.in/pageturner/excerpt/veer-savarkar-hindutva-india/38073/ Date: 03.06.2018

17. https://www.outlookindia.com/newswire/story/ks-sudarshan-the-uninhibited-nationalist/775296 Date: 08.06.2018
18. http://koenraadelst.bharatvani.org/articles/fascism/golwalkar.html Date: 12.06.2018
19. इंजीनियर, असगर अली; एक सपना जो सच हो सकता है; साम्प्रदायिकता का जहर (सं. डॉ. रणजीत); मानवीय समाज प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, संस्करण: 2011; पृ.19
20. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत 1885-1947; राजकमल प्रकाशन, 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-02; संस्करण: 1992; पृ.165
21. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ.106
22. गांधी, महात्मा; हिन्दू-मुसलमान; साम्प्रदायिकता का जहर (सं. डॉ. रणजीत); मानवीय समाज प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद - 211001, संस्करण: 2011; पृ.19
23. http://hi.literature.wikia.com/wiki/%E0%A4%A Date: 18.06.2018
24. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ.85
25. http://www.rediff.com/news/report/pm/20050811.htmDate: 17.06.2018
26. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ.85
27. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ.80
28. सिंह, भगत; सांप्रदायिक दंगे और उनका इलाज; सांप्रदायिकता का जहर (सं. डॉ. रणजीत); मानवीय समाज प्रकाशन, 15-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2011, पृ.95
29. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ.25
30. श्रीवास्तव, जितेन्द्र; प्रेमचंद हिन्दू मुस्लिम एकता सम्बन्धी कहानियों एवं विचार; भारतीय ज्ञानपीठ,18 इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003; संस्करण: 2012; पृ.8
31. वही; पृ.10

तीय अध्याय

मुद्राराक्षस की कहानियों में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता की समस्या

तृतीय अध्याय

मुद्राराक्षस की कहानियों में अभिव्यक्त सांप्रदायिकता की समस्या

मुद्राराक्षस प्रसिद्ध साहित्यकार हैं जिन्होंने हिन्दी नाटक और रंगमंच के साथ-साथ कहानी के विकास में भी अग्रणी भूमिका निभाई है। इनका संबंध साठोत्तरी कहानीकारों से है। साठोत्तरी कहानी को कहीं अकहानी भी कहा जाता है। साठोत्तरी कहानी के दो अर्थ हैं। सामान्य अर्थ में 1960 के बाद की सारी कहानी इसमें शामिल होती है। किन्तु, अब 'साठोत्तरी' को विशेषण नहीं बल्कि संज्ञा का अंश मान लिया गया है अर्थात् यह काल सूचक नाम नहीं है। मुद्राराक्षस अपने साहित्य में अपने ढंग से जूझते या संघर्ष करते दिखाई देते हैं। मुद्राराक्षस को जनवादी साहित्यकार भी कहा जाता है।

जनवादी आंदोलन 1967 के आसपास की विशेष परिस्थितियों का परिणाम है। इस दौर में आजादी से मोहभंग की शुरूआत हो चुकी थी क्योंकि देश की तथाकथित आजादी व्यक्ति के स्तर पर रूपांतरित नहीं हुई थी। इन्जीनियर असगर अली लिखते हैं, "भारत में आज लोग राजनैतिक निर्णय व्यक्तिगत तौर पर नहीं लेते। हर व्यक्ति अपनी जाति और समुदाय के सदस्य के रूप में राजनैतिक निर्णय लेता है। यह निर्णय सामूहिक होता है और सम्बन्धित जाति या समुदाय के हितों के संदर्भ में लिया जाता है। पश्चिम में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की ये बाधाएँ बहुत समय पहले दूर हो गयी थी।"[1] प्रगतिवादी लोग इस कागज़ी आजादी की निरर्थकता लगातार बता रहे थे। सातवें दशक (1960-70) में स्थितियाँ और तेजी से बिगड़ी। 1962 में चीन से युद्ध हुआ जिसमें भारत की पराजय हुई। 1965 में पाकिस्तान से फिर युद्ध हुआ। इन युद्धों ने देश की कमर तोड़ दी। 1967 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी जीत तो गई किंतु जीत का

अंतर बेहद मामूली रहा। केरल तथा पश्चिम बंगाल में मार्क्सवादी सरकारें बनी जिससे जनवाद की सुगबुगाहट पैदा होने लगी। इसी समय नक्सलवाद का तीव्र उभार हुआ। जिससे जनक्रांति के प्रति आस्था गहराने लगी। इस समय जयप्रकाश नारायण भी देश में बड़े परिवर्तन के लिए आह्वान कर रहे थे।

जनवादी आंदोलन में दो चरण दिखाई पड़ते हैं। पहला चरण 1965-75 तक का है, जबकि दूसरा 1975 के बाद का जो किसी न किसी रूप में अभी तक चल रहा है। पहले चरण में जोश व उमंग की अत्यधिक मात्रा दिखती है क्योंकि इस समय सामाजिक परिवर्तन की संभावना के प्रति गहरा विश्वास विद्यमान था। 1975 में अचानक आपातकाल की घोषणा हुई। इससे क्रांति का सपना तो टूटा ही, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना भी कठिन हो गया। इसके बाद जातिवाद व सांप्रदायिकता का तीव्र उभार हुआ तथा जनवादी क्रांति की सारी उम्मीदें धराशायी हो गई।

जनवाद के समय तक चीन की जनवादी क्रांति सम्पन्न हो चुकी थी। चीन भौगोलिक व आर्थिक दोनों दृष्टियों से भारतीय परिस्थितियों के अधिक निकट था। वहाँ की क्रांति में कृषकों की केंद्रीय भूमिका रही थी तथा जनवादी शासन में भी एक वर्ग की तानाशाही के स्थान पर कृषक, मजदूर तथा बुर्जुआ वर्गों की सम्मिलित व्यवस्था को अपनाया गया था। भारत के समाजवादी विचारक जैसे आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण तथा राममनोहर लोहिया भी कृषिमूलक समाजवाद की स्थापना पर बल दे रहे थे जो जनवाद के अधिक अनुकूल था। यह उल्लेखनीय है कि मुद्राराक्षस ने अपने साहित्य का निर्माण इस सामाजिक परिवेश से जुड़कर किया। समाज का यथार्थ उनकी कहानियों मे स्पष्ट दिखता है।

दस से ज्यादा नाटकों, दर्जन भर उपन्यासों के अलावा व्यंग्य के तीन और पाँच कहानियों के संग्रह दिए। मुद्राराक्षस साठोत्तरी कहानीकारों में आते हैं। इन्होंने शोषण पर

आधारित सामाजिक संरचना को बदलकर एक शोषणमुक्त समाज के निर्माण में दिलचस्पी दिखाई है। दूधनाथ सिंह कहते हैं "मुद्राराक्षस ने अपनी लेखकीय जिंदगी कलकत्ता में ही शुरू की थी। हमेशा से वह तेज और तुर्श लेखन के प्रति ईमानदार थे। उनकी कहानियां इसी का सबूत पेश करती हैं।"[3] स्थापित संस्कृति का अपने आप से संघर्ष उनकी कहानियों में जब-तब होता रहता है। इनकी कहानियों का उद्देश्य सृष्टि के अनंत रहस्यों पर प्रकाश डालते हुए मनुष्य की चेतना का परिष्कार करना है, जिससे वह मानव सभ्यता के विकास में सहयोग देती हुई इस अनंत प्रसार के साथ एकता का अनुभव कर सके। 1955 से लेकर 1960 तक का दौर अलग था और 1967 में देश के राजनैतिक उथल-पुथल मच गई। मुद्राराक्षस ने लिखा, "1967 में देश में खासी बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल शुरू हुई। इस राजनीतिक हलचल के बीच मेरे कथा लेखन का वह दौर शुरू हुआ, जिसे मैं रचना में राजनीतिक सक्रियता कह सकता हूँ। यहाँ से ऐसी कहानियाँ लिखनी शुरू की, जो मेरे जुलूस, हड़ताल, धरना, प्रदर्शन का ही एक दूसरा रूप थी।"[3] मेरा विषय इनकी कहानियों में सांप्रदायिकता की समस्या देखना है। सांप्रदायिकता का संबंध केवल धर्म या राजनीति से नहीं है। समाज के ठेकेदार और धर्मांध लोग अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए किस हद तक जा सकते हैं इसका उल्लेख इनकी कहानियां जले मकान के कैदी, दिव्य दाह, पैशाचिक, एक बंदर की मौत, एहसास और युद्ध करती हैं।

भूमंडलीकृत समाज का एक अंतर्विरोध यह है कि वह एक समय में वैश्विक होने के साथ-साथ स्थानीय है। किसी भी युग में किसी राष्ट्र की समस्याएँ किसी एक कौम या जाति की समस्याएँ नहीं हैं। राष्ट्र की समस्या उस राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति की समस्या होती है। राष्ट्र के सामने जो समस्या है, उसका संबंध हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी से है। बेकारी से सभी दुःखी है। दरिद्रता, बीमारी, अशिक्षा, बेकारी हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई का विचार नहीं करती। वैश्विक और स्थानीय एक होने के कारण धार्मिक विद्वेष, जातीय विद्वेष से ऊपर उठ नहीं पाता। राजनेता और कट्टरवादी ताकतें अपना अस्तित्व और साम्राज्य कायम रखने के लिए इन

विद्वेषों में आहुति देती रहती हैं। जिससे समाज या देश धार्मिक-जातीय विद्वेषों में जलता, कराहता रहता है। मुद्राराक्षस की कहानी 'दिव्य-दाह' धर्म के नाम पर होनी वाली हिंसा, हत्या और लूट-खसोट को दर्शाती है। गांधी जी ने लिखा है, "हर व्यक्ति की धर्म की अपनी-अपनी धारणा होती है, इस तथ्य पर ध्यान देते हुए, उन्होंने यहाँ तक कहा कि हिन्दू-मुसलमान यदि शास्त्रियों और मुल्लाओं को बीच में न आने दे तो उनके बीच झगड़े का मुंह हमेशा काला ही रहेगा।"[4] 'दिव्यदाह' कहानी एक साथ दो घटनाओं को लेकर चलती है। पहली ब्राह्मणवादी ताकतों का धर्म के नाम पर शूद्रों के साथ जुल्म करना दूसरा हिन्दू-ईसाई दंगों को दिखाती है। 'दिव्यदाह' के फादर जानवरों से बदतर जिंदगी जीने वाले लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, जागरूक बनाना जैसी सुविधा मुहैया कराना चाहते हैं। लेकिन सांप्रदायिक या फासिस्ट ताकतें यह कैसे बर्दाशत कर सकती हैं कि राष्ट्र उन्नति की ओर बढ़े। वर्ग विभेद के विषय में मुद्राजी लिखते हैं, "महात्मा गांधी के दबाव में आकर पूना पैक्ट करना बाबा साहब की ऐतिहासिक भूल थी। वे यह गलती नहीं करते तो आज देश में खुद को हिंदू कहने वालों की संख्या आठ प्रतिशत ही होती और दलित, पिछड़े व आदिवासी स्वायत समुदाय होते, तब न हिंदू बहुसंख्यक होने का दावा कर पाते, न बाबरी मस्जिद ध्वस्त होती और न ही गुजरात में कत्ल-ए-आम हो पाता। अल्पसंख्यकों के प्रति घृणा और सांप्रदायिकता का हौव्वा खड़ा कर दलित समस्याओं की अनदेखी भी तब संभव नहीं होती।"[5] जिन गांधी जी ने आमरण अनशन करके दलित व पिछड़ों को बहुसंख्यक बनाने का पक्का इंतजाम किया था आज उन्हीं हिन्दुओं के साथ हिन्दुओं का दूसरा वर्ग धर्म के नाम पर दलितों को भीगे हुए कपड़ो सहित तेज तपते हुए लोहे के तवे पर बैठाया जाता है। याज्ञिक कहता है "शर्मा जी, किसी से एक बड़ी अंगीठी मंगाकर पीछे मंदिर के बगीचे में सुबह से ही सुलगवा दीजिएगा। उसके ऊपर गर्म करने के लिए एक बड़ा तवा भी चाहिए। शोध्य को उस पर बीस पल के लिए बैठाया जाएगा। इसके बाद दोनों हथेलियां रखी जाएगी और तवे पर जिह्वा से पांच बार स्पर्श करना होगा। अगर वह शोध्य जलता नहीं है तो

वह पवित्र है। उसने चोरी नहीं की है।''[6] समाज के इन ठेकेदारों से यह जानना चाहिए कि ब्राह्मण को तो सबसे पवित्र माना गया है अगर ऐसे जलते तवे पर पल भर के लिए वह बैठ जाये तो उसके पवित्र होने या ना होने का प्रमाण मिल जायेगा। दिव्य दाह का कथानक उच्च वर्ग के अत्याचार के साथ शूद्रों की बदतर जीवन शैली व धर्म के नाम पर अत्याचार, हिंसा और दंगों को दिखाता है।

नाले के किनारे कूड़े और मैल की तरह चिपकी बस्ती में झोपड़ी बना के जीवनयापन करने वाली नोखे कबाड़ी की विधवा रहती थी। नोखे का रद्दी का उद्योग ऐसा था, जिसमें उसकी बीवी भी हिस्सा बंटाती और बच्चे भी। एक दिन उसका एक लड़का जानकी वल्लभ के घर रद्दी लेने गया तो उस समय उसकी बहू का सोने का हार गुम हो जाता है जिसका आरोप नोखे के लड़के पर लगता है। लड़के ने उस हार को नहीं चुराया होता है। पर वो लोग बार-बार उसी लड़के पर हार को चुराने का इल्जाम लगाते हैं एवं उसे पिटवाते हैं। माँ बेटा दोनों के बार-बार गिड़गिड़ाने पर वे लोग धार्मिक अनुष्ठान के जरिए सच का पता लगाने के लिए लड़के को मंदिर उठा कर ले जाते हैं। धर्म की आड़ में आसानी से उन लोगों का शोषण करते हैं, "इस लड़के को मंदिर चलकर परीक्षा देनी होगी। फैसला हम नहीं, धर्म करेगा। क्या धर्म पर विश्वास नहीं हैं? परीक्षा में ये सच्चा साबित हुआ तो सबके सामने जानकी वल्लभ जी को क्षमा मांगनी पड़ेगी और अगर यह चोर साबित हुआ तो सजा पाएगा।''[7] सजा का परिणाम क्या होगा इसमें कोई संशय नहीं था।

मार्टिन राम जो वहां के पादरी होने के साथ-साथ नहर के किनारे बसी इस बेहद मैली बस्ती के बच्चों को पढ़ाते एवं स्वास्थ जैसे सुविधा उपलब्ध कराते थे। उन्हें जब यह पता चला कि नोखे के लड़के को जुर्म कुबूल कराने के लिए एक धार्मिक आदिम विधि निभाई जा रही है तो उनका दिल दहल जाता है। धार्मिक विधि जो 'याज्ञवल्क्य' में उद्धृत बृहस्पति के वचन के अनुसार थी जिसे 'दिव्य' कहा जाता है। जिसमें शोध्य को गरम तवे पर बीस मिनट बिठाया

जाता है अगर वह जल जाता है तो वह अपवित्र है। इस सबका विरोध पादरी मार्टिन राम ने किया तो उन्हीं के चर्च पर हमला हुआ और उन्हें देश विरोधी गति-विधियों में शामिल है कहकर देश द्रोही ठहराया गया। मार्टिन राम ने पुलिस की भी मदद लेनी चाही मगर पुलिस उन्हीं पर आरोप-प्रात्यारोप करने लगी। एक अधिकारी बोला, ‘‘आप जानते हैं, यह मामला कितना संवेदनशील है। आखिर यह धर्म का मामला है। किसी दूसरे धर्म में आप दखलंदाजी क्यों करना चाहते हैं?’’

मार्टिन राम आहत हुए, फिर भी उन्होंने तर्क करने की कोशिश की, ‘‘सवाल एक मनुष्य की जिंदगी का है।’’

अधिकारी घूरता हुआ बोला, ‘‘देखिए, मैं तो नहीं चाहता था, पर अब बता ही दूं। हमारे पास कई लोगों ने रिपोर्ट की है कि आप आसपास के गरीब लोगों को जोर-जबर्दस्ती ईसाई बनाते हैं। ईसाई बनाने के लिए उन्हें लालच भी देते हैं।..... लोगों ने यह भी रिपोर्ट की है कि आपका चर्च राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों का अड्डा है’’[8] पुलिस तंत्र को लेकर असगर अली लिखते हैं, ‘‘विभिन्न समुदायों की आबादी के अनुरूप पुलिस में उनके प्रतिनिधित्व की माँग एक आकर्षक नारा भर है जो कि एक अत्यधिक गम्भीर और लाइलाज लगने वाली बीमारी को एक गोली से ठीक करने का दावा करता है। इससे पुलिस बलों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने की बात करना बेमानी है।’’[9]

फादर जो उन गरीब बच्चों की शिक्षा और इलाज के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। फासिस्ट ताकतें उन्हें सन्देह से देखती हैं, उनके चर्च को नुकसान पहुंचाती हैं। देखने वाली बात यह है कि पुलिस भी धर्म के नाम पर एक बच्चे को जिंदा जला देने वाली घटना को संवेदनशील मामला बताकर नजरअंदाज या कन्नी काट लेती है और उल्टा फादर को भी

धमकाती है। कहानी बड़े ही खूबसूरत ढ़ंग से पारवंडी हिंदुओं और पूंजीपति लोगों और पुलिस का पर्दाफाश करती है और सोचने पर मजबूर करती है आखिर धर्म का स्वरूप क्या है?

'युद्ध' कहानी का संबंध सीधे-सीधे तौर पर तो सांप्रदायिकता से नहीं है। लेकिन इस कहानी का संबंध हिंसा और युद्ध के दौरान होनी वाली उस दहशत से है जिसका शिकार एक स्त्री को होना पड़ता है। हार या जीत किसी भी पक्ष की हो लेकिन उस हार या जीत की कीमत एक स्त्री के अपने मान से चुकानी होती है। हारी हुई सेना का सिपाही अपने अफसर से कहता है, "हमें समूचे शहर में सिर्फ चार औरतें मिलीं, जो इस कदर बूढ़ी हो चुकी हैं कि कुत्ता भी उन्हें खा नहीं सकता!'' एक सैनिक ने साहस करके कहा।

"आपका काम हो चुका है, इस औरत को हम चाहते हैं।'' दूसरे ने पीछे से चिल्लाकर कहा।''[10]

दुश्मन को पीछे धकेलते हुए उनके अपनी ओर के सैनिक शहर में आ पहुंचे। विजयी सेना ने भी औरत का वही हाल किया जो पराजित सेना के सैनिकों ने किया "उनमें से एक आदमी दरवाजे की ओर खड़ा हो गया अपनी स्टेनगन लेकर और बाकी जल्दी-जल्दी अचानक, आशा के विपरीत मिल गयी इस औरत पर टूट पड़े, किसी ने धक्का देकर पति को एक ओर धकेल दिया। मलबे के कारण लेटने या बैठने की गुंजाइश नहीं थी। शायद फुरसत भी नहीं थी। देर तक यह गरम नाच होता रहा।"[11]

कहानीकार मुद्राराक्षस ने युद्ध चित्रण बहुत मार्मिक रूप से किया है। कहानी की शुरूआत युद्ध के माहौल से होती है। गांव में सैनिक धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए घरों पर बमबारी करते हुए दहशत फैला रहे थे। पूरे गांव में एक का सा माहौल फैल गया। घर में रहने वाले पति पत्नी युद्ध के इस सारे परिदृश्य को खिड़की से देख रहे थे और पति इंतजार कर रहा था कि सेना आयेगी और शत्रुओं को पराजित कर देगी। लेकिन पत्नी निश्चित होकर बैठी थी। अचानक एक

साथ कई धमाके हुए घर टूटने लगे। इसी बीच शत्रु सैनिकों के जलजले ने घर में प्रवेश किया और औरत को देखकर चिल्लाने लगे। यह लूट का माल है इसे हम लेंगे। सैनिकों का अफसर उन्हें वहां से जाने का हुक्म सुनाकर उस औरत पर झपटा उसे अचानक यह लगा कि कमरे में औरत और यह विजेता अफसर है। औरत ने उसके चहरे पर थूका। पलक झपकाते ही उसने औरत को इस तरह पकड़ा जैसे किसी ने भागती हुई सांपिन को पकड़ लिया हो लेकिन औरत ने अपने दांत उसकी कलाई में धंसा दिये और खुद को बचा लिया। इसके बाद अफसर सैनिक ने अपने आक्रोश को संभालते हुए पति को खाने का इन्तजाम करने का हुक्म दिया और पत्नी जैसे ही बाहर की और भागी सैनिक ने उसे पकड़ लिया "वह एक-एक कर उसके कपड़े इस तरह चीरता गया, जैसे उसकी खाल उतार रहा हो। एक-एक धज्जी उसने चीरकर अलग फेंक दी।''[12]

पति ने अपनी अकर्मण्यता और बेबसी का परिचय देते हुए ना तो उस अफसर को रोका और ना ही कुछ कहा और पत्नी की इज्जत लूटते देखता रहा। अफसर के खाना खाने के थोड़ी देर बाद उसके दर्जनों सैनिक आ गये और उस औरत पर सारे के सारे एक साथ टूट पड़े। "भीड़ में देर तक पता नहीं चला कि औरत कहां है पति चुपचाप एक ओर दीवार से, किसी काक्रोच की तरह चिपका हुआ खड़ा रहा।''[13] उसके बाद फिर लड़ाई शुरू हुई और पहले से ज्यादा बमबारी होने लगी। शत्रु सैनिक हार गये और स्थानीय सेना विजित हुई। लेकिन स्त्री के साथ वही सब दुबारा दोहराया गया बस फर्क इतना था कि इस बार शत्रु सैनिकों की तरफ से आये रिपोर्टरस और स्थानीय सेना की तरफ से आए रिपोर्टरस को एक ही बयान दिया और बयान दोनों ही पक्षों के हित में था।

"औरत ने पूछा – "मैं यह भी कह सकती हूँ कि तुम लोगों ने क्या किया है?''

"नहीं! कतई नही!''

टेपरिकॉर्डर चलने लगा। धीरे-धीरे घूमती चर्खियों के पार देखती हुई औरत बड़ी सावधानी से एक-एक बात, जैसी कही गयी थी, उसी तरह बोलती चली गयी। तोते के तरह।[14]

अंत में उसके पति ने उसका हालचाल पूछा तो उसने उसके मुंह पर जोर से थूक दिया और कहानी का अंत इन पंक्तियों के साथ हो गया कि पत्नी उठकर खड़ी हो गयी। अजीब निगाहों से उसने बाहर की ओर देखा, गोया तीसरी बार धमाके शुरू होने का इंतजार हो!

यह कहानी युद्ध की उस चरम विभित्सा का वर्णन करती है जिसमें भौतिक संपति के साथ मान का भी हरण होता है। मुद्राराक्षस की यह कहानी युद्ध के बाद विभित्सा के उस चहरे को दिखाती है जिसे पढ़कर रूह काँप जाती है कि किस कद्र एक स्त्री का अपमान किया जाता है। जिस स्त्री को सभी धर्म ग्रंथों ने इतना ऊँचा स्थान दिया है उसी स्त्री को पुरूष किस कदर रौंदता है? मनुष्य की बर्बरता को देखते हुए यह कथन उचित लगता है आदमी ज्यादा पाश्विक होता है और पशु ज्यादा मानवीय।

बाबरी मस्जिद-रामजन्मभूमि विवाद लगभग एक दशक तक राजनीति और साहित्य पर छाया रहा। यह विवाद इतना तीखा इसलिए था क्योंकि स्वतंत्रता के बाद पहली बार भारतीय जनता सांप्रदायिक आधार पर बटी। रामजन्म भूमि मन्दिर का निर्माण और बाबरी मस्जिद का गिरना कतई बहुसंख्यक हिन्दुओं की माँग नहीं थी। बाकायदा लिब्रहान रिपोर्ट में यह स्पष्ट उल्लेखित है कि आम जनता को मंदिर के बनने और मस्जिद के ढहने से कोई सरोकार नहीं था। ना ही संघ के नेताओं और ना ही आडवाणी ने अपने भाषणों में कभी संकेत दिया कि उनका इरादा मस्जिद ढहाने का है क्योंकि आम हिन्दू को यह कभी गंवारा नहीं होता।

बाबरी मस्जिद और रामजन्मभूमि विवाद का उद्देश्य मात्र सत्ता और सिर्फ सत्ता पाना था जिसके लिए नेता कुछ भी करने से गुरेज नहीं करता। इस सत्ता की कीमत चाहे बेगुनाह लोगों, निर्दोष पुरुषों, महिलाओं और बच्चों का खून ही क्यों ना हो। रामजन्मभूमि विवाद के

बाद देश में बड़ी-बड़ी सांप्रदायिक घटनाऐं हुई जैसे मुम्बई आतंकवादी हमला, गोधरा कांड, मुजफ्फर नगर दंगा ये सभी मस्जिद ढहाए जाने का परिणाम थे। अक्सर यह देखा गया है कि दंगे या तो चुनाव से पहले या किसी घोटाले के सामने आने पर करवाये जाते है ताकि देश का युवा इन घोटालों के बारे में सोचने के बजाय दंगों के बारे में सोचे, हिन्दू-मुस्लिम, सिख, ईसाई के बारे में सोचे। मुद्राराक्षस की कहानी 'एहसास' भी कुछ ऐसे ही कथानक पर आधारित है। पटकथा 1987 मेरठ दंगों पर आधारित है। जो बोफोर्स कांड का परिणाम थे। जब राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे उस समय बोफोर्स घोटाला सामने आया। उस समय उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री बीरबादुर सिंह थे, जिन्होंने सत्ता और पार्टी को बचाने के लिए भोली-भाली जनता के बीच दंगे करवाये ताकि जनता का ध्यान इन घोटलों पर जाये ही नहीं। भोली-भाली जनता भी ऐसी जिसमें हमदम साहब जैसे लोग है जो अपने नेताओं पर भरपूर विश्वास करते हैं कि उनके नेता जनता की हिफाज़त करते हैं।

कहानी शुरू होती है मलियान गाँव से जहाँ गाँव के प्रत्येक घर से लोगों को पी.ए.सी द्वारा गाजियाबाद बोर्डर पर ले जाया जा रहा है ताकि उन्हें गोलियों से उड़ा दिया जाये और हिंदू-मुस्लिम दंगे का रूप दे दिया जाये। मरने वालों की संख्या अठहत्तर थी, अठहत्तर नहीं छिहत्तर थी क्योंकि अब्दुल रऊफ जो पंचर लगाता था और हमदम साहब जो शेरों शायरी के लिए मशहूर थे वे लोग जिन्दा बच गये थे। बचे हुये इन दो से पुलिस ने तफशीश की कि गाजियाबाद बॉर्डर पर क्या हुआ। रऊफ ने बताया "हमारे घरों में एक हजारों सिपाही थे पी.ए.सी. के। हमारा सारा सामान सड़क पर फेंक दिया। औरतों, बच्चों को बंदूक के कुंदों से मारने लगे, तब हम बक्सों के ढेर के पीछे से निकल आए सारे मुहल्ले के जितने मर्द थे, बूढ़े जवान किसी को नहीं छोड़ा।.....सबको लाइन से खड़ा कर दिया और तड़ातड़ गोलियां चलाने लगे। साहब, एक-एक को भून दिया, एक-एक को। एक-एक को मार दिया साहब।"[15] सत्ता को बचाने के लिए बोफोर्स से जनता का ध्यान हटाने के लिए दंगा करवाया गया और

उसी दंगे के सिलसिले में पी.ए.सी. के जवानों ने मर्द, बूढ़े, जवान, औरतों, बच्चों किसी को नहीं छोड़ा और गोली चला कर मार दिया। हमदम साहब जैसे लोग जो नेताओं पर भरोसा करते हैं और भरोसा भी इस कदर की मानने का तैयार नहीं की यह काम उनके वजीरे आला बीरबहादुर सिंह और राजीव गांधी की देन है। भरोसा तो उस समय टूटता है जब वह अखबार में यह पढ़ते हैं कि बयान देने वाले रउफ और हमदम पाकिस्तानी जासूस है।

बचे हुए दो लोगों का अस्पताल में इलाज करवाकर बयान लिया गया यह खबर अखबार मे छपी और मुद्दा बनी रही। हमदम साहब जो अपने गांव लौट जाना चाहता था पुलिस ने कर्फ्यू के कारण उसे गांव के बाहर से ही वापस भेज दिया। उसे कुछ गड़बड़ लगा और वह गवर्नर के पास गया। वही गवर्नर जिसको छब्बीस जनवरी को अपनी शेरो शायरी के माध्यम से हमदम साहब ने गदगद् कर दिया था और खुशी से गवर्नर ने हमदम साहब के कंधे पर हाथ रखा था। हमदम गवर्नर को अपनी आपबीती सुना ही रहा था कि गवर्नर ने उनके हाथ में अखबार दिया जिसे पढ़कर उसके होश उड़ गये "जनाब....मैं.....खुदा कसम जनाब, ये सब झूठ है। सफेद झूठ। मैं.....मेरा मतलब खुदा गवाह है, मेरा किसी पाकिस्तानी जासूस से ताल्लुक.....मगर हुजूर सुनिए, क्या आप भी इस बयान पर यकीन करते हैं? मैं तो जनाब, रऊफ को भी खूब जानता हूँ। वो साइकिल का पंचर ठीक नहीं बना पाता, गैरकानूनी असलहा क्या बनाएगा-जनाब.....मैं.....ये तो हद है हुजूर,.....आप तो मुझे जानते है हुजूर।"[16] इसी बीच एक बार फिर गवर्नर ने उसके कंधे पर वही हाथ रखा लेकिन यह गौरव और सम्मान का बखान नहीं कर रहा था, इस वक्त यह हाथ वहीं पड़ा था, जहां जख्म था जिससे हमदम को गहरी पीड़ा का एहसास हुआ और वो पीड़ा उनके कलेजे तक उतर आई।

इस तरह यह कहानी जनता के उस भोंदूपन का समझाती है जो अपने आकाओं पर अटूट विश्वास करती है और सत्ता के ये लोग किस तरह इस विश्वास को झकझोर देते हैं। सत्ता के लिए किसी को भी आतंकवादी घोषित करने में हिचकिचाते नहीं है और धर्मनिरपेक्षता का

भद्दा मजाक बनाते हैं। उचित है कि आतंकवाद एक विशिष्ट राजनैतिक परिस्थिति की राजनैतिक प्रतिक्रिया है और ये विशिष्ट राजनैतिक परिस्थितियाँ बीरबाहदुर सिंह जैसे लोगों द्वारा उत्पन्न की जाती है जो कौमी एकता मानने वाले साधारण मनुष्य को मजबूर करती है। आतंकवादी, सांप्रदायिक और नक्सलवादी हिंसा के लिए हमारी राजनीति किस हद तक जिम्मेदार है यह कहानी उन स्थितियों पर व्यंग्य करती है। सांप्रदायिक, आतंकवादी और नक्सलवादी हिंसा के पीछे के कारण अलग-अलग हो सकते हैं परन्तु इन सबके बीच जो समानता है वह हैं हिंसा जिसमें निर्दोष लोग अपना जान-माल गँवाते हैं।

मुद्राराक्षस की कहानी 'जले मकान के कैदी' भिन्न-भिन्न सामाजिक समुदायों के बीच विरोधी मतों के संघर्ष से पैदा होने वाले तनावों को चित्रित करती है। बाबरी मस्जिद गिराये जाने से पूरे भारत में एक दहशत का सा माहौल फैल गया था जिसके कारण हिंदू-मुस्लिम एक दूसरे के कट्टर विरोधी हो गए और सत्ता ने इसका भरपूर फायदा उठाया। धर्म संबंधी पार्टियों ने हिंदुत्व का भरपूर प्रचार किया। हिंदू धर्म के नाम पर होने वाली राजनीति हिन्दुत्व कहलाती है। धार्मिक पार्टियां एक दूसरे धर्म के लोगों से तो घृणा सिखाती ही हैं, साथ ही जो लोग इस तरह के विचारों का विरोध करते हैं उन्हें भी डराते धमकाते हैं। लेखक लिखते हैं, "बैठे हुए युवक भी खड़े हो गए। जाते-जाते उन्होंने धमकी भी दी। साफ तो नहीं, पर उन्होंने यह जाहिर किया था कि अगर मैनें अपने विचार नहीं बदले तो वे बम से उड़ा देंगे। उनकी उस धमकी ने नहीं, बल्कि इस बात ने मुझे उलझन में डाल दिया था कि वे कोई भी तर्क सुनने को तैयार नहीं थे। वे अनपढ़ नहीं थे, पर ऐसे लोग अब अक्सर मिल जाते थे, जो दस्तानों में बना ली गई कठपुतलियों की तरह आचरण करते थे। किसी भी तर्क को वे खारिज कर देते थे। किसी भी सवाल का एक ही जवाब उनके पास होता था, 'आप हिंदू-विरोधी हैं।''[17] कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि एक युवक जिसे आदर्शवादी होना चाहिए उसके दिल में जहर के अलावा कुछ नहीं है।

कहानी का नायक और उसके साथ कुछ लोगों को एक जले मकान में ले जाया गया। उन्हें मुसलमानों के पक्षधर और हिंदू-विरोधी समझकर कुछ हिंदू धर्मांध लोग पकड़ कर एक घर में ले गये। ये घर नायक के दोस्त मीम नसीम का था जिसे आपातकाल के समय में अपमानित कर भगा दिया गया था। ये हिंदू मतांध लोग इन्हें तरह-तरह से अपमानित करते।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों ने और उनके साथियों ने शहर में एक अजीब सी मुहिम चला रखी थी जिसे वह 'ललकार' कहते थे। "किसी मुसलमान का मकान देखकर वे उसके दरवाजे पर हॉकियाँ पटकते थे, जिससे एक दहशत फैल जाती थी। इन लोगों का निशाना मुसलमान तो होते ही थे, वे हिंदू भी इसी तरह आतंकित किए जाते थे, जिनके बारे में उन्हें पता होता था कि वे 'ललकार' वालों से असहमत हैं। कई बार अपनी घृणा दिखाने के लिए वे इनके दरवाजों पर थूकते थे या खुलेआम पेशाब कर देते थे।"[18]

हिंदू धर्मांध लोग इन्हें हिंदू-विरोधी समझकर इन्हें इस मैकान में ले आये। मकान में जगह उठने बैठने के लिए कम पड़ रही थी। न बिजली थी, न रोशनी और न ही खाने-पीने का इन्तजाम। ये लोग यहाँ पर यातानामय और खौफनाक जीवन बीता रहे थे। इन कैदियों के घरवालों के साथ भी ये धर्मांध लोग बदसलूकी और बुरा व्यवहार करते थे। "छह दिसंबर को बाबरी मस्जिद टूटने के बाद देश में दंगाग्रस्त इलाकों का दौरा करते वक्त हिंदू धर्मांधों की जो तस्वीर मुझे मिली थी, वह खासी ही डरावनी थी एक जगह तो उन्होंने बाकायदा कुछ औरतों के सारे कपड़े उतार लेने के बाद उन्हें पीटते हुए सड़कों पर दौड़या था और बड़े इत्मीनान से इस दृश्य की फिल्म भी तैयार की थी।"[19] इन लोगों का अत्याचार असहनीय हो गया था। इसी बीच एक रात इन कैदियों को मारने के लिए किसी दूसरी जगह एक पहलवाननुमा व्यक्ति द्वारा ले जाया जा रहा था। इन कैदियों में एक महाशय द्वारा 'धोखा दिया जा रहा हैं' कहते हुए बाकी लोगों को 'खबरदार' करते हुए चिल्लाया, तब विशाल काय आदमी और उसके साथ आये लोगों ने इस आदमी को उछालकर दरवाजे के खुले हिस्से से बाहर फेंक दिया गया। बीच-बीच

में ये क्रूर लोग अश्लील हँसी हँसकर भद्दी टिप्पणियां भी करते "इन हरामियों को तो हम सूँघकर भी जान लेते हैं। सेकूलर साला दूर से भी मुसल्ले की दाढ़ी की तरह महकता है।"[20] कैदी को बाहर फेंक देने के कारण अचानक भीड़ में हलचल होने लगी। एक कैदी ने 'मारो' के नारे के साथ उस पहलवाननुमा आदमी के पेट में तेज धार वाली वस्तु घुसा दी। वह झाड़ियों को कतरने वाली भारी भरकम कैंची थी। पहलवाननुमा आदमी दोनों हाथों से उस कैंची को बाहर खींचने लगा लेकिन असफल रहा। यह देखकर बाहर खड़े मशाल वाले लोग चीखने लगे। इस तरह कहानी के अंत तक राख से काले हुए हर व्यक्ति ने समझ लिया कि निर्णायक लड़ाई शुरू हो चुकी है।

यह कहानी स्पष्ट करती है जिस तरह नसीम का घर जल चुका था और उस पर कालिख जम गयी थी उसी प्रकार आज धर्मांध लोगों का मल जल चुका है और उन्होंने धर्म को गलत परिभाषित करके उस पर कालिख जमा दी है। ये लोग धर्म के नाम पर इतने मदहोश हो चुके हैं कि लोगों पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं और समाज का माहौल अस्वस्थ करते हैं। अत्याचारों से परेशान होकर आम आदमी या शांतिप्रिय इंसान भी हिंसा पर उतरने को मजबूर हो जाता है। जिससे स्थिति सुधरने के बजाय और विरोधी हो जाती है। जिसके कारण सांप्रदायिकता के तंतु इतने उलझते जाते है कि उसे सुलझाना मुश्किल हो जाता है।

मुद्राराक्षस की कहानी 'एक बंदर की मौत' बड़ी ही दिलचस्प कहानी लगती है। एक बंदर जो हिंदू-मुस्लिम कुछ नहीं समझता लेकिन हिंदू धर्म में बंदर को हनुमान का प्रतीक माना जाता है तो बंदरों का धर्म भी धर्मांध लोगों के अनुसार हिंदू हुआ। यह कहानी एक बंदर के माध्यम से बड़े दिलचस्प तरीके से हिन्दुत्व पर प्रहार करती है। ये कहानी एक बंदर जिसका नाम पहले जहीनुद्दौला था लेकिन बाद में भगवाधारी लोगों की कृपा से 'नन्हे' हो गया था और बालक मुचडू के आस-पास घूमती है।

मुचड़ू उस औरत का एक मात्र संतान है जिस का पति मर चुका है और सहारा कोई नहीं। वह औरत बूढ़ी, बेहद दुबली पतली है। गली के तीसरे अधगिरे मकान की ऊपरी मंजिल में रहती है चक्की चलाने का काम करती दाल पीसकर अपना जीवन व्यापन करती है। उस बूढ़ी औरत की तरफ उसका बेटा मुचड़ू उदास है। मुचड़ू को माँ पसंद नही थी। इसलिए बाल्यावस्था में खुद कमाकर खाता था। वह औरत रात में गाती थी। गली के एक बच्चे के हादसे के आरोप में वह औरत गाँव छोड़कर चली गई थी। कुछ समय बाद लौट आई। उसके आने-जाने से मुचड़ू पर कोई फर्क नहीं पड़ा। हाँ विकास के नाम पर गली की शक्ल अवश्य बदल गई थी। सबसे बड़ा परिवर्तन कुछ दूर से ही दिखता था। घरों में बिजली का इस्तेमाल ज्यादा था और लोगों ने पानी के अपने नल लगवा लिए थे। गली में जो खंभा था उस पर सरकारी तार पांच थे लेकिन घरों में बस्ती जलाने के लिए जो तारे उन पाँच तारों से जोड़ी गई थी उनसे गुच्छा बहुत भारी हो गया था।

इसी गली में एक अतीक नाम का लड़का रहता था जिसने एक बंदर पाल रखा था जिसका नाम जहीनुद्दौला था। उन दिनों कुछ एक हिंदुओं ने एक आंदोलन चला रखा था जिसे वे 'हिंदू जागरण अभियान' कहते। उनका मानना था हिंदू सो रहे थे और मुसलमान जाग रहे थे इसलिए मजे लूट रहे थे। इस अभियान के दौरान एक भगवादारी लड़के ने अतीक को आवाज लगाकर कहा

"अबे ओ अतीक के बच्चे, बाहर निकल!''....."क्या बात हो गई राजा भैया? मैंने तो आपकी झंड़ी लगा रखी है।''

"अबे, भगवा लगाकार कौन-सा एहसान किया तूने, ऐं?

भगवा नहीं लगाएगा तब क्या पाकिस्तानी झंड़ा लगाएगा? ये बंदर तेरा हैं?'' मक्कू ने पूछा

"क्या नाम रखा है इसका?.....

मैंने इसका नाम जहीनुद्दौला रखा हैं।''.....

तब तक उस 'राजा भैया' ने अतीक का गला पकड़ लिया। तीन-चार भद्दी गालियां देकर अपने साथियों से बोला, "हरामी श्री राम भक्त हनुमान को बंदर बता रहा है। अबे, ये बंदर हैं।''

देखते ही देखते वह थोड़ा-सा पिटा, ज्यादा नहीं। उन लोगों की रूचि पीटने से ज्यादा अपनी बात का वजन सिद्ध करने में थी। सहसा राजा भैया को याद आया, "और हां, ये जहीनुद्दौला क्या नाम हुआ? ये बंदर मुसलमान है?''[21] इस घटना के बाद से अतीक को समझ आया कि यह बंदर मुसलमान नहीं है श्री राम भक्त हनुमान का रूप है तो वह मुसलमान कैसे हो सकता है। उसने इस बंदर का नाम 'नन्हे' रख दिया।

उन दिनों अफवाहों के सहारे एक अभियान चला था जिसमें मूर्तियां दूध पीती थी खासतौर पर गणेश की मूर्ति। ये दूध लाने का काम मुचड्डू करता था। जिस दिन मूर्तियों को दूध पिलाने का काम चल रहा था उस दिन सारे शहर से दूध गायब था। दूध पिलाने के लिए बेहाल लोगों की काफी मदद राजा भैया कर रहे थे। राजा भैया ने इसी दौरान अतीक को दूध ले जाते हुए देखा और कहा तू इस दूध का क्या करेगा। अतीक ने कहा यह दूध 'नन्हे' के लिए है। "कौन नन्हे'' राजा भैया ने कहा। अतीक बोला अपना बंदर नन्हे। इस पर राजा भैया ने खीझकर कहा ये साला बंदरों को दूध पिलायेगा। जो बंदर कल तक हनुमान का रूप था आज उसका दूध बेजान मूर्तियों को पिलाया जा रहा था। लोगों को पीने को दूध चाहे मिले या ना मिले पर मूर्तियों को अवश्य मिलना चाहिए। ये अफवाहें ही हिंसा का कारण होती है और इन्हीं अफवाहों के कारण ही मूर्तियां दूध पीती हैं।

एक दिन गली में बिजली के तार से लटक कर एक बंदर मर चुका था उस बंदर को वहाँ से निकाल कर मुचड्डू रास्ते में एक कपड़े के टुकड़े पर उसे रख कर बैठ गया था और उस बंदर पर आने जाने वाले लोग काफ़ी पैसे डाल रहे थे। उस बंदर को कहीं दूर ले जाकर गाड़ आए थे। राजा भैया ने कीर्तन भी करवाया था और मुचड्डू ने सारे पैसे ले लिये। वह लाश ले जाते वक्त उस लाश के ऊपर फेंके जाने वाले पैसों को भी इकट्ठा कर लेता था। कुछ दिनों बाद एक ओर बंदर वैसे ही मरा। इस बार

मंगलवार होने के कारण क्योंकि इस दिन लोग हनुमान जी की पूजा करते हैं उसे और ज्यादा पैसे मिले। यह सब देख कर अतीक का बंदर चिढ़ने लगा और इससे मुचडू भी चिढ़ गया। दरअसल जो बंदर मरे थे वह स्वयं नहीं मरे थे। उन्हें मारा गया था क्योंकि मुचडू जाने-अनजाने में धर्म की खोखली आस्था को समझ गया था और पैसे कमाने के लिए इससे बेहतर क्या रास्ता हो सकता था। दूसरे बंदरों की ही तरह उसने अतीक के बंदर को भी मारना चाहा लेकिन बंदर के साथ-साथ वह भी तारों के उस जंजाल में फंस गया जिस बिजली के खंबे के तारों के जंजाल से वह बंदरों को मारता था। नन्हे और मुचडू दोनों तारों की आतिशबाजी में तैर गये और फिर चीखते हुए गली में नीचे आ गिरे।

मुद्राराक्षस की यह कहानी धर्म पर अंध आस्था रखने वालों पर जबरदस्त व्यंग्य करती हैं। इस कहानी मे बाल मजदूरी का भी पक्ष दिखता है कैसे एक बच्चा अपना पेट पालने के लिए अपने जीवन को खतरे में डाल देता है और जान गंवा बैठता है।

विस्थापति और पैशाचिक ऐसी कहानियां है जो सीधे तौर पर तो सांप्रदायिकता से नहीं जुड़ती है लेकिन सांप्रदायिकता के छुपे हुऐ तंतुओं पर प्रहार करती है जो दिन-ब-दिन उलझते जा रहे हैं। पैशाचिक कहानी में एक व्यक्ति जो 'नाई' है लेकिन बड़ा संगीतकार बनना चाहता है लेकिन बहुत से बाधक तत्व है जो उसे 'नाई' से भिन्न कुछ बनता देखना नहीं चाहते। ये तत्व आज भी समाज में मौजूद है जो जनता का उत्थान नहीं चाहते क्योंकि जनता के उत्थान से उनका अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। जिसका वर्णन दूसरे अध्याय में किया गया है किस प्रकार शूद्रों के उत्थान से श्रेष्ठी वर्ग के लोगों को दिक्कत होने लगी और उन्होंने हिन्दुत्व की राजनीति का सहारा लेकर इन लोगों को दबा दिया। हिन्दू हो या मुसलमान या सिख सबने अपने फायदे के लिए इस निम्न जाति का उपयोग किया और धोखा दिया। नायक का यह संवाद पूरी व्यवस्था की कहानी को बयां कर देता है "यह एक ऐसा पिशाच था, जो गुणसूत्र की तरह उनके पिता से उन्हें मिला था। कभी-कभी कोई अभागा ऐसा भी पैदा हो जाता है, जिसे अपने वाल्दैन से नाम, मुंह, आंख, रंग-रूप के ही नहीं, किसी और चीज के अनचाहे गुणसूत्र भी मिल जाते हैं, जैसे किसी रोग के गुणसूत्र। लगभग वैसा ही

गुणसूत्र उन्हें भी मिला था-नाई होने का गुणसूत्र।''[22] इस पिशाच से वह मुक्ति चाहता था लेकिन मुक्त हो नहीं पाता है।

पिता ने उस की शादी कर दी बच्चे भी हो गए। कामेश्वर पंडित की कृपा से उसे एक काम भी मिला। लेकिन काम वही जो गुणसूत्रों से मिला था। नाई का काम। फिर भी उस्ताद बनने की उम्मीद खत्म नहीं हुई। एक मौके पर कामेश्वर ने उसका गाना सुना भी था और तारीफ भी की लेकिन संगीतकार बनने का हौसला ना देकर, हजामत की दुकान के लिए जगह की बात कहकर चले गये। किसी तरह नाई शहर पहुँच गया। संगीत पार्टी में काम करने लगा लेकिन काम ज्यादा दिन जमा नहीं। उस के बाद वह मजदूरी करने लगा। उसी दौरान एक आर्यसमाज के आयोजन में गाने का अवसर मिला और खूब प्रशंसा भी बटोरी लेकिन नाई होने के कारण उसे अवसर नहीं दिया गया और एक बार फिर नाई रूपी पिशाच ने उसका पीछा नही छोड़ा। आज भी ऐसे कई नाई है जो काबलियत रखते हुए भी मात्र अपनी जाति के पिशाच के कारण अवसरों से वंचित है और अपने पारंपरिक काम को करने में मजबूर है जिसका फायदा व्यवस्था भरपूर उठाती है।

मुद्राराक्षस की कहानियां सिर्फ एक पक्ष नहीं लेती हैं। मानवेतर व्यवस्था और विचारधारा की तीखी आलोचना करती हुई इनकी कहानियां आमजनों के पक्ष में खड़ी रहती है। आमजन के लिए तो मुद्राराक्षस सीधे-सीधे समाज के ठेकेदार होने का जो दावा करते हैं उनसे भिड़ने को तैयार रहते थे। समाज में सांप्रदायकिता की समस्या एक महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक समस्या है। मुद्राराक्षस ने अपनी कहानियों के माध्यम से इस समस्या पर गम्भीरता से विचार किया और उन तंतुओं की पड़ताल कि जिसमें प्रत्येक संप्रदाय के श्रेष्ठी वर्ग किस प्रकार स्वार्थ की राजनीति और सत्तालोलुपत्ता के लिए इंसान तो दूर जानवरों (एक बंदर की मौत) तक का धर्म निर्धारित कर देते हैं।

देश के राजनैतिक और धार्मिक श्रेष्ठी वर्ग सांप्रदायिक भाषणबाजियों और अपने हित के लिए किसी को भी आतंकवादी घोषित करने से जरा भी नहीं हिचकिचाते हैं। 'एहसास' कहानी गवर्नर और हमदम सहाब के माध्यम से सत्ता के इस खोखलेपन को दर्शाती है। 'राष्ट्रीय सहारा' में अपने एक लेख 'आस्था से न देखें इतिहास को' में मुद्राराक्षस ने लिखा, "अभी बजरंग दल के एक

नेता ने अपने भाषण मे कहा कि औरंगजेब संस्कृत के किसी ग्रंथ को देखते ही उसे जलवा देता था। दुख होता है कि हिंदी क्षेत्र के इस तरह के नेता अपने देश के इतिहास को नहीं पढ़ते हैं। इतिहास की घटनाओं को नितांत काल्पनिक शायद इसलिए बनाकर देखा जाता है कि तथ्यों को तोड़ मरोड़कर अपने संगठन की राजनीति के लिए इस्तेमाल किया जा सके।''

जिस प्रकार कबीर ने भक्तिकाल के समय में सामाजिक व्यवस्था पर सवाल खड़े किये थे उसी तरह मुद्राराक्षस व्यवस्था से सीधे टक्कर लेते हैं जिसके कारण उनकी अनेक रचनायें सरकार द्वारा जब्त कर ली गई है या उनका बहिष्कार किया। धर्म, जो कि भारत में बड़ा ही संवेदनशील मुद्दा है और जिसका सहारा लेकर राजनीति की जाती है। जाहिर सी बात है जो व्यक्ति तर्क करेगा व्यवस्था के लोग उसका बहिष्कार और उसे नकस्लवादी/आतंकवादी ठहराने से कैसे गुरेज कर सकते हैं।

मजेदार बात है अंग्रेजों को प्रेमचंद की 'सोजेवतन' से अपनी व्यवस्था चरमराती दिखी तो उसे जब्त करवा लिया गया। आज नेताओं, पूंजीपतियों, धर्मांध लोगों को मुद्राराक्षस से खतरा दिखा तो उनकी रचनाओं का बहिष्कार किया। व्यवस्था हर उस व्यक्ति के हाथ को दबा देना चाहती है जो उसकी तरफ उठता है। लेकिन मुद्राराक्षस ने कभी भी इनकी परवाह नहीं की और बेबाकीपन से अपनी कलम जारी रखी। यह अवश्य है कि इस तरह की हरकतों ने उन्हें तोड़ अवश्य दिया था लेकिन झुका नहीं पाई। अपने लेखों के माध्यम से तो मुद्रा जी तर्क करते ही हैं, पोजीशन लेते हैं, एक पक्ष में खड़े होते हैं और हमला बोलते हैं। अपने कथा-साहित्य में भी वही तर्क, पोजीशन लेते हैं लेकिन यहां एक संस्कृति का अपने आप से जूझना है। एक शापग्रस्त सभ्यता का आत्मसंघर्ष भी है उदाहरण के लिए, संघी-बजरंगी किस्म की राजनीति और विचारधारा की तीखी आलोचना इनकी कहानियों में है (जले मकान के कैदी, दिव्य दाह) लेकिन उन्हीं आमजनों में, जिनके पक्ष में मुद्राजी खड़े हैं, इस विचारधारा की स्वीकार्यता उनकी कहानियों को सामाजिक यथार्थ की उन गहरी परतों तक ले जाती है जहाँ सभ्यता-समीक्षा एक अंत: संघर्ष का अपने आप से जूझने का रूप-ग्रहण करती है।

संक्षेप में कहना समीचीन है कि मुद्राराक्षस सांप्रदायिकता की उत्पत्ति और उसके मूल में अलगाववादी शक्तियों, नेताओं की सत्ता के लिए स्वार्थ की राजनीति, आर्थिक असंतुष्टि तथा अवसरवादी शक्तियों को कारण के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी कहानियों को पढ़कर हम समाज के भीतर घटित हो रही विभिन्न स्थितियों की विवेचना कर सकते हैं। वे अपने पात्रों के माध्यम से अफवाहों के प्रकरण फैलाने वाली सांप्रदायिकता और परिस्थितिजन्य उन्माद की ओर पाठकों का ध्यान इंगित करते हैं। उनकी कहानियां कट्टर धार्मिक शक्तियों एवं नेताओं के द्वारा सत्ताकांक्षा के लिए आम जनता को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करने का वर्णन सोचने पर विवश करती हैं कि क्या कोई मनुष्य इतना क्रूर हो सकता है कि धर्म के नाम पर एक छोटे से बच्चे को तेज आँच पर सुलगते तवे पर बैठने को मजबूर करे एवं हमदम साहब जैसे कौमी एकता को मानने वाले साधारण मनुष्य को अपने स्वार्थ के लिए आतंकवादी घोषित करे।

हमारे देश में धर्म के नाम पर जो खून की नदियां बहाई जा रही हैं, यह इस देश का ऐसा नासूर है जिसके कारण भारत का सर हमेशा शर्म से झुका है। सांप्रदायिकता का चित्रण करते हुए लेखक ने इसके निदान के भी संकेत दिए हैं। जिस प्रकार मीम नसीम के घर में कैद लोग ये समझ चुके थे कि निर्णायक लड़ाई उन्हें ही लड़नी है उसी प्रकार सांप्रदायिक ताकतों के विरुद्ध आम जनता को ही खड़ा होना पड़ेगा। हमारा प्रजातंत्र परिपक्व नहीं है और हमें हिंसा, गुंडागर्दी करने वाले सभी तत्वों से कड़ाई से निपटना चाहिए चाहें वे हिंदू हो, मुसलमान हो, सिख हो या इसाई। हिंसा को कतई बर्दाशत नहीं किया जाना चाहिए। यह हमारे प्रजातंत्र की कसौटी होगी। अगर हम प्रजातांत्रिक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ना चाहते है तो हमें सभी प्रकार की संकुचित और सांप्रदायिक भावनाओं से छुटकारा पाना होगा। धर्म के राजनीतिकरण से हम पहले ही बहुत नुकसान उठा चुके हैं। आखिर हम जले मकान के कैदी की तरह कब चेतेंगे ?

मुद्राराक्षस अपनी कहानियों में मीडिया के खोखलेपन का खुलकर चित्रण करते हैं। मीडिया की अपनी मजबूरियां हो सकती हैं और राजनेताओं के अपने स्वार्थ हो सकते हैं, परन्तु विद्वानों और बुद्धिजीवियों को तो नेताओं और मीडिया की बातों को आँख मूंदकर स्वीकार नहीं करना चाहिए।

अपने पूर्वाग्रहों से लड़ना चाहिए और सत्य की खोज को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। गांधीजी का जोर तो हमेशा सत्य पर रहा है उन्होंने तो सत्य को ईश्वर तक की उपाधि दे दी थी।

इतिहास इस बात का गवाह है कि धर्म का सहारा लेकर अपने कृत्यों को उचित ठहराने का प्रयास हमेशा से होता रहा है। यही उनकी कहानियों में धर्मांधियों के माध्यम से देखने को मिलता है। किस प्रकार वे याज्ञवल्क्य का सहारा लेकर धर्म के नाम पर अपने कुकृत्य को उचित ठहराते हैं एवं धर्म एवं जाति के आधार पर एक छोटे से बालक का शोषण करतें हैं। मुद्राराक्षस मानते हैं हमारे देश में हिंदुत्व की शक्तियाँ धार्मिक शब्दावली का इस्तेमाल अपने राजनैतिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए करती रही हैं ।राममंदिर का मुद्दा और उस मुद्दे को लेकर श्री आडवाणी द्वारा निकली गयी रथयात्रा का उद्देश्य क्या राम के प्रति श्रद्धा का राजनैतिक दुरूपयोग करना नहीं था? मुद्राराक्षस अपनी कहानियों के माध्यम से इस प्रपंच को समझने की समझ देते हैं की आधुनिक प्रजातंत्र में कई तरह के अन्याय होते रहते हैं और इन अन्यायों पर पर्दा डालने के लिए हमारे राजनेता एवं सांप्रदायिक ताकतें धार्मिक भाषणबाजी का उपयोग करने में सिद्धहस्त हैं।

सांप्रदायिकता की समस्या हमारे समाज के मनोविज्ञान को किस प्रकार प्रभावित करती है, इसे जानने एवं समझने में मुद्राराक्षस की कहानियां हमारी मदद करती हैं। अफ़वाहों, भय, असुरक्षा, अविश्वास की जो स्थितियां सांप्रदायिक दंगों के समय हमें देखने को मिलती हैं। उन पर बारीकी से मुद्राराक्षस न केवल अपने समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले नियमित स्तंभों से प्रहार करते हैं, बल्कि वे कहानियों में भी इसे बारीकी से पात्रों के माध्यम से व्याख्यायित करते हैं।

संदर्भ

1. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ. 88
2. https://www.jansatta.com/rajya/famous-literature-writer-author-mudra-rakshas-died-after-long-time-treatment/106185/Date:13.06.2018
3. मुद्राराक्षस; दस प्रतिनिधि कहानियां; किताबघर प्रकाशन, 4855-56124, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण:2005; भूमिका
4. डॉ. रणजीत; सांप्रदायिकता का जहर; मानवीय समाज प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2011; पृ.19
5. सिंह, कृष्ण प्रताप सिंह; तर्क, विवेक, विज्ञानबोध और मुद्राराक्षस; बहुवचन (सं. अशोक मिश्र); महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा; संस्करण:जनवरी-मार्च, 2017; पृ.25
6. मुद्राराक्षस; मुद्राराक्षस संकलित कहानियां; नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन, 5 इस्टीट्यूशनल एरिया, फेज - ।। बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070;संस्करण: 2009, पृ.62
7. वही; पृ.61
8. वही; पृ.67
9. इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ.83
10. मुद्राराक्षस; इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ; डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा.लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020, संस्करण: 2008; पृ.53
11. वही; पृ.59
12. वही; पृ.53
13. वही; पृ.54
14. वही; पृ.55
15. मुद्राराक्षस, मुद्राराक्षस संकलित कहानियां; नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-।। बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070; संस्करण: 2009; पृ.34
16. वही; पृ.40

17.वही; पृ.18

18.वही; पृ.16

19.वही; पृ.20

20.वही; पृ.13

21.वही; पृ.44, 45

22.वही; पृ.102

उपसंहार

उपसंहार

सर्वहारा के प्रति सहानुभूति, शोषकों के विरुद्ध आक्रोश, गंभीर चिंतन तथा व्यापक अध्ययन 'सुभाषचंद्र आर्य' के व्यक्तित्व को 'मुद्राराक्षस' बनाता है। मनुष्य जीवन की विभिन्न धरातलों पर व्यापत विडम्बनाओं, विसंगतियों पर मुद्राराक्षस अपने साहित्य के माध्यम से चोट करते हैं। इन्हें जो भी गलत दिखाई देता है,उस पर ये कहीं भी समझौता नहीं करते हैं ।ये समझौता न होने के मूल में मुद्राराक्षस की चिंता मानवीय भावनाओं के विकास की और रही है। अत: वे गुदगुदाने का उद्देश्य नहीं रखते। उनका मक्सद विविध संदर्भों में व्यवस्थाजन्य बेतुकेपन का मज़ाक उड़ाते हुए उससे पीड़ित व्यक्ति की चेतना को झकझोरने का है। मुद्राराक्षस राजनीतिक पार्टियों के अवसरवाद, आपसी खींचतान, जन प्रतिनिधियों की नौटंकी आदि का सबके सामने पर्दाफाश करते हैं। उनके साहित्य में समाजवादी या मार्क्सवादी चेतना, उच्च वर्गवालों के निम्न वर्ग के लोगों का शोषण आदि सामाजिक विडंबनाओं को देख सकते हैं। इन्होंने विभिन्न राजनीतिक विषयों को उठाकर वर्तमान राजनीति की विडंबनाओं को प्रस्तुत किया है ।राजनीति के जाल में आम आदमी किस तरह फँस गया है, उसका यथार्थ चित्र खींचा है। आज रिश्वत, जमाखोरी, मुनाफ़ाखोरी, भ्रष्ट संस्थानवाद, स्वार्थपरकता, सूदखोरी, खोखले आदर्शों और सांप्रदायिक दंगों से युक्त समस्याओं का उठाते हैं ।

व्यक्ति और व्यक्ति के परस्पर सम्बन्ध, समाज और परिवेश के सम्बन्ध, आज की वैचारिकता, तकनीकी की प्रगति, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, जीवन की यांत्रिकता, औद्योगीकरण, नगरीकरण, नारी की चेतना, प्रेम और यौन संबंधों की परिवर्तित परिभाषा, रिश्तों में बदलाव आदि के रूप में मूल्यों का बदला रूप मुद्राराक्षस देख सकते हैं । साठोत्तरी रचनाकारों की जो प्रवृतियाँ हैं उन प्रवृतियों में प्रमुख रूप से सामजिक, राजनीतिक,

मनोविज्ञानिक और ऐतिहासिक प्रवृतियों को मुद्राराक्षस अपनाते हैं एवं अपने तर्कों, विज्ञानबोध से दूसरों से भिन्न अपने व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।

यूँ तो देखा जाये तो संप्रदाय कला, साहित्य, राजनीति तथा धर्म प्रत्येक क्षेत्र में पाये जातें हैं। लेकिन कोई व्यक्ति अथवा समाज सांप्रदायिक एवं संप्रदायवादी क्यों कहा जाता है। धार्मिक क्षेत्र में जब कोई व्यक्ति अपने धर्म को एवं अपने धर्म की मान्यताओं को सर्वोपरि रखने के साथ किसी अन्य धर्म को हेय की दृष्टि से देखता है तो वह संप्रदायवादी कहलाता है। सांप्रदायिकता का यह रूप हमारे समाज में निरंतर एक कोढ़ की तरह भारत जैसे विविध धर्मों, संस्कृतियों वाले देश को खोखला करने पर तुला है जिसे राजनीतिक पार्टियाँ अपने स्वार्थ हितों की पूर्ति हेतु बढ़ावा भी देती हैं, और भड़काती भी हैं। आज जगह-जगह घटने वाली धार्मिक हिंसा का यह स्वरूप बहुत कुछ इस घिनौनी राजनीति के कारण ही है। अस्सी के दशक में घटी घटनाएं यथा राम जन्मभूमि, बाबरी मस्जिद आदि सांप्रदायिक घटनायें अलग और अधिक विकराल रूप में हमारे सामने मुँह बायें खड़ी होती जा रही हैं। युवा वर्ग को दिगभ्रमित करने का कार्य ये सांप्रदायिक ताकतें कर रही हैं।

ऐसे दौर में सांप्रदायिकता की समस्या को समझने में मुद्राराक्षस हमारी मदद करते हैं। मुद्राराक्षस निश्चित रूप से बड़े कथाकार हैं। सांप्रदायिकता जैसे संवेदनशील और ज्वलंत मुद्दे पर लिखना हमारे समय में किसी भी तरह के जोखिम से कम नहीं है। मुद्राराक्षस स्वंय धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति थे। वे एक प्रतिबद्ध लेखक थे। सांप्रदायिकता जैसे मुद्दे पर लिखना उनके लिए किसी तरह का शौक नहीं, बल्कि इसके विरोध में वे अपनी कलम को हथियार की तरह प्रयोग करते थे। राष्ट्रीय सहारा में सांप्रदायिकता एवं दूसरी समस्याओं में नियमित रूप से कॉलम लिखने वाले मुद्राराक्षस के दस प्रतिनिधि कहानियाँ, मुद्राराक्षस संकलित कहानियां, इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ, प्रतिहिंसा तथा अन्य कहानियाँ कहानी संग्रह हमें देखने को मिलते हैं जिसमें जले मकान के कैदी, दिव्य दाह, पैशाचिक, एक बंदर की मौत, युद्ध, एहसास आदि

कहानियां सांप्रदायिकता की समस्या के विभिन्न स्वरूपों को हमारे सामने लाती हैं। उनकी इन कहानियों में समाज के विभिन्न संप्रदायों के भीतर के संबंधों और उनके तनावों को देखा जा सकता है। कोई भी समस्या कैसे किसी एक संप्रदाय को भय, असुरक्षा और नफ़रत के माहौल में से निकलने नहीं देती, यह मुद्राराक्षस की कहानियों में हमें बारीकी से देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

अ) आधार ग्रंथ:

- मुद्राराक्षस; इक्कीस श्रेष्ठ कहानियाँ; डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा.लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020; संस्करण: 2008
- मुद्राराक्षस; दस प्रतिनिधि कहानियाँ; किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2013
- मुद्राराक्षस; प्रतिहिंसा तथा अन्य कहानियाँ; विकास पेपरबैक्स, IX /222 मेन रोड गांधी नगर, दिल्ली-11003; संस्करण: 1992
- मुद्राराक्षस; संकलित कहानियां; नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-।। बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070; दूसरा संस्करण: 2009

आ) सहायक ग्रंथ :

- इंजीनियर, असगर अली; धर्म और सांप्रदायिकता; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010
- गांधी, महात्मा; हिन्दू-धर्म क्या है?; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-।। बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070; संस्करण; 1993
- गुप्ता, रमणिका; सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे; वाणी प्रकाशन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2004
- दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय; लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण: 2012
- नेहरू, जवाहरलाल; टण्डन, रामचंद्र (सं.); हिन्दुस्तान की कहानी; सस्ता साहित्य मण्डल; एन -77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001; संस्करण: 2015

- बिष्ट, पंकज; (सं.) धर्म प्रासंगिकता के सवाल; समयांतर प्रकाशन, 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली -110095; संस्करण: 2006
- मुद्राराक्षस, रोमेल; मुद्राराक्षस साहित्य वीथिका; मुद्राराक्षस हिन्दी साहित्य फाउंडेशन, सोलिटेयर टावर, पैरामाउंट सिम्फनी, क्रासिंग रिपब्लिक, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश; संस्करण: 2017
- मुद्राराक्षस; आला अफसर; राधाकृष्ण प्रकाशन, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2017
- मुद्राराक्षस; नारकीय; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002; संस्करण: 2009
- (डॉ.) रणजीत (सं.); सांप्रदायिकता का जहर; मानवीय समाज प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद - 211001; द्वितीय संस्करण: 2011
- श्रीवास्तव, जितेन्द्र; प्रेमचंद हिन्दू –मुस्लिम एकता सम्बन्धी कहानियों एवं विचार; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली -110003; संस्करण: 2012
- सरकार, सुमित; आधुनिक भारत 1885-1947; राजकमल प्रकाशन, 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-02; संस्करण:1992

इ) पत्र –पत्रिकाएँ

- सिंह, कृष्ण प्रताप सिंह; तर्क, विवेक, विज्ञानबोध और मुद्राराक्षस; बहुवचन (सं. अशोक मिश्र); महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा; संस्करण: जनवरी-मार्च, 2017

ई) कोश

- काश्यप, (डॉ.) सुभाष एवं गुप्त, विश्वप्रकाश; राजनीति कोश; हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 10 केवेलरी लाइन, दिल्ली -110007; संस्करण: अगस्त 2015

उ) वेबसाइट

- http://hi.literature.wikia.com/wiki/%E0%A4%A Date: 18.06.2018
- http://koenraadelst.bharatvani.org/articles/fascism/golwalkar.html Date: 12.06.2018
- http://www.rediff.com/news/report/pm/20050811.htm Date: 17.06.2018
- http://www.thehindu.com/features/friday-review/He-took-on-hypocrisy/article14425993.ece Date: 24.05.2018
- https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/bjp-gains-in-polls-after-every-riot-says-yale-study/articleshow/45378840.cms Date: 03.06.2018
- https://theprint.in/pageturner/excerpt/veer-savarkar-hindutva-india/38073/ Date: 03.06.2018
- https://www.jansatta.com/rajya/famous-literature-writer-author-mudra-rakshas-died-after-long-time-treatment/106185/ Date: 13.06.2018
- https://www.outlookindia.com/newswire/story/ks-sudarshan-the-uninhibited-nationalist/775296 Date: 08.06.2018